जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2531

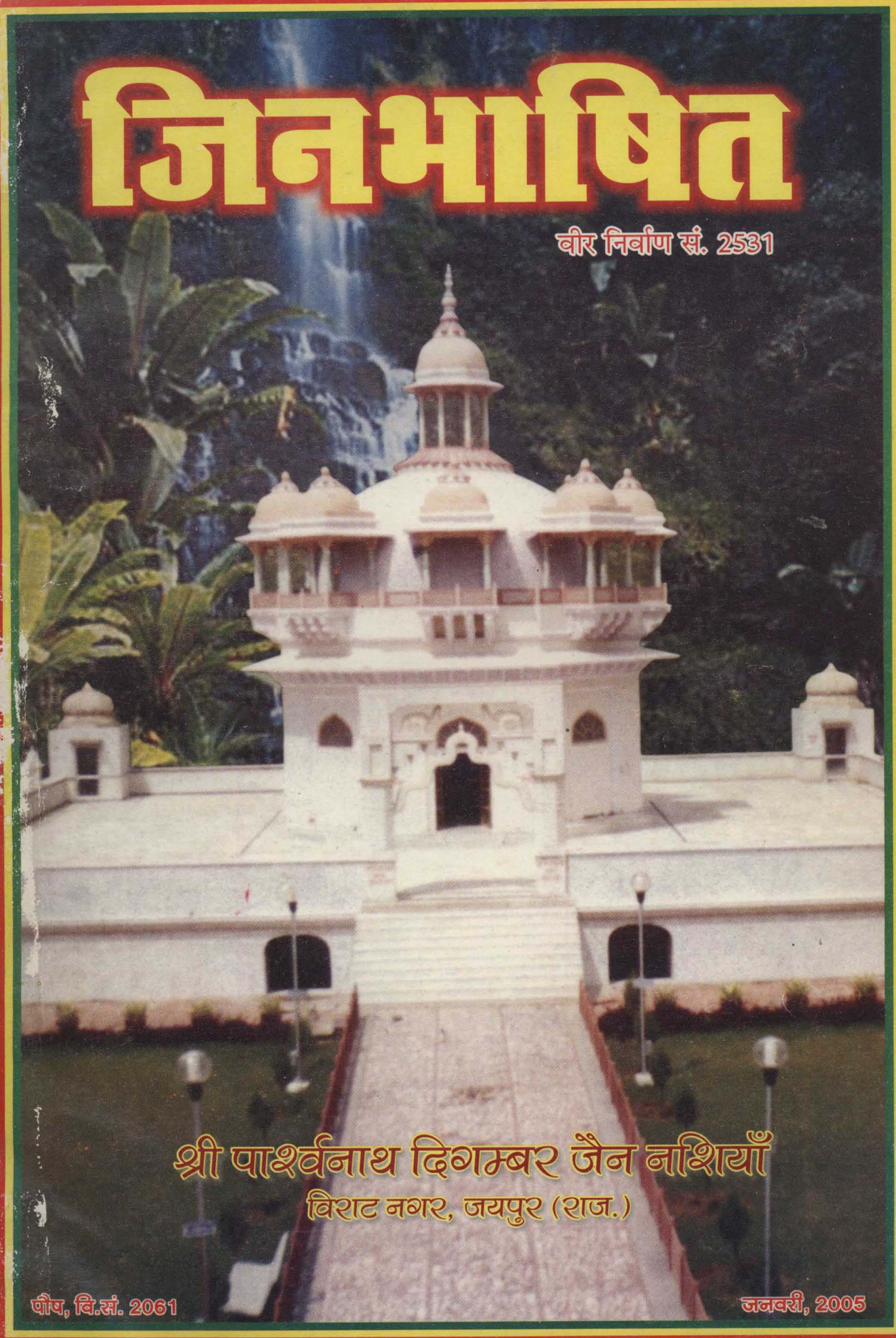

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन नशियाँ

विराट नगर, जयपुर (राज.)

पौष, वि.सं. 2061

जनवरी, 2005

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

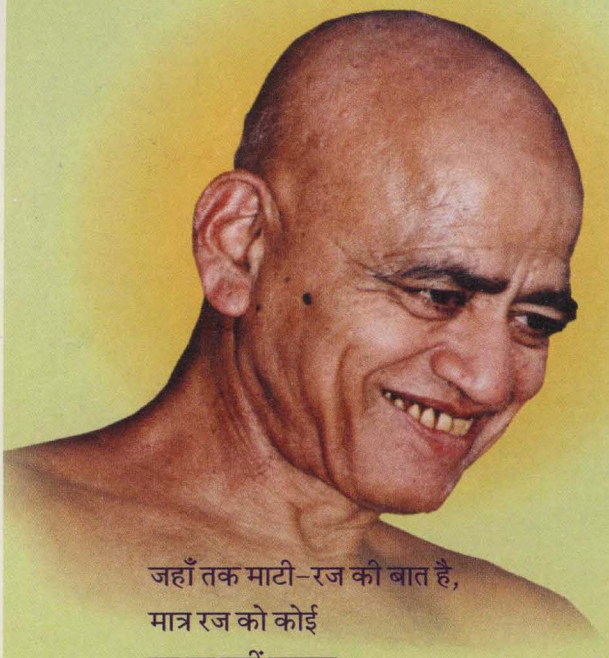

रज में पूज्यता आती है चरणसम्पर्क से

आचार्य श्री विद्यासागर जी

जहाँ तक माटी-रज की बात है,
मात्र रज को कोई
सर पर नहीं चढ़ाता
मूढ़-मूर्ख को छोड़कर।
रज में पूज्यता आती है चरण-सम्पर्क से।
और
वह चरण पूज्य होते हैं
जिनकी पूजा आँखें करती हैं,
गन्तव्य तक पहुँचाने वाले
चरणों का मूल्य आँकती हैं
वे ही मानी जाती सही आँखें।
चरण की उपेक्षा करने वाली
स्वैरिणी आँखें दु:ख पाती हैं
स्वयं चरण-शब्द ही
उपदेश और आदेश दे रहा है
हितैषिणी आँखों को, कि
चरण को छोड़कर
कहीं अन्यत्र कभी भी
चर न! चर न!! चर न!!!
इतना ही नहीं,
विलोम रूप से भी
ऐसा ही भाव निकलता है,
यानी
च...र...ण न...र...च...
चरण को छोड़कर
कहीं अन्यत्र कभी भी
न रच! न रच! न रच!...

हे भगवन्!
मैं समझना चाहता हूँ कि
आँखों की रचना यह
ऐसे कौन से परमाणुओं से हुई है-
जब आँखें आती हैं...तो
दु:ख देती हैं,
जब आँखें जाती हैं...तो
दु:ख देती हैं!
कहाँ तक और कब तक कहूँ,
जब आँखें लगती हैं...तो
दु:ख देती हैं!
आँखों में सुख है कहाँ?
ये आँखें
दु:ख की खनी हैं
सुख की हनी हैं
यही कारण है कि
इन आँखों पर विश्वास नहीं रखते
सन्त संयत-साधु-जन
और
सदा-सर्वथा चरणों को लखते
विनीत-दृष्टि हो चलते हैं
...धन्य!

'मूकमाटी' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC

डाक पंजीयन क्रं.-म.प्र./भोपाल/588/2003-05

जनवरी 2005 | मासिक | वर्ष 3, अङ्क 12

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल 462039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक
पं.मूलचन्द लुहाड़िया
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ.श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन, 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी
(आर.के. मार्बल्स)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कालोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428,
2852278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ **सम्पादकीय** : सुनामी लहरें : सहयोग की सुनामी लहरें उठें 2

◆ **प्रवचन**

- साधर्मी को गले लगाओ : मुनि श्री प्रमाणसागर जी आ. पृ. 4

◆ **लेख**

- नन्दीश्वरद्वीप मढ़ियाजी : एक परिचय : मुनिश्री क्षमासागर जी 4
- पूजन विधि : सिद्धान्ताचार्य पं. हीरालाल जी शास्त्री 7
- जल में जीवत्व : सार्थक कदम का इंतजार : डॉ. अनिल कुमार जैन 10
- रात्रि भोजन निषेध : वैज्ञानिक एवं आरोग्य मूलक विश्लेषण : प्राचार्य निहालचंद जैन 11
- अहिंसा और वर्तमान जीवन शैली : डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती' 16
- काल-मापन : डॉ. अभय खुशालचन्द्र दगड़े 21
- साधुओं की चर्या ज्ञान, ध्यान और तप में ही लगनी चाहिए : डॉ. नरेन्द्र जैन 'भारती' 25

◆ **प्राकृतिक चिकित्सा**

- गर्भपात की प्राकृतिक चिकित्सा या सावधानियाँ : डॉ. वन्दना जैन 28

◆ **जिज्ञासा- समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा 30

◆ **कविता :**

- रज में पूज्यता आती है चरणसम्पर्क से : आचार्य श्री विद्यासागरजी आ. पृ. 2
- मुनि श्री क्षमासागरजी की चार कविताएँ आ. पृ. 3
- जिनवाणी माँ : मनोज जैन 'मधुर' 27

◆ **समाचार** 6, 9, 15, 20, 24, 29,32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित विवादों के लिए न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

सुनामी लहरें : सहयोग की सुनामी लहरें उठें

क्रिसमस और शीतावकाश मनाने पहुँचे सैलानियों को यह कहाँ पता था कि वे जिन द्वीपों और समुद्र बीच पर पहुँचे हैं, वे उनके लिए मौज-मस्ती का सबब नहीं, बल्कि मौत का सामान बनने जा रहे हैं। दि.26 दिसम्बर को प्रातः 6 बजकर 29 मिनट पर आये भूकम्प के कारण समुद्र में जो तूफान आया और उससे जो 'सुनामी लहरें' उठीं उनसे अब तक लगभग तीन लाख लोगों के हताहत होने की खबरें आ चुकी हैं। भारत, श्रीलंका, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड, मलेशिया, म्यांमार, मालदीव और बांगलादेश इनसे सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। अकेले श्रीलंका और इण्डोनेशिया में दो लाख से अधिक लोग मर चुके हैं। हमारे देश भारत में तमिलनाडु, केरल, अण्डमान-निकोबार द्वीप, पांडिचेरी, आन्ध्रप्रदेश सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं जहाँ हजारों जानें गयी हैं। हजारों लोग विनाश के मुँह से तो बच गये हैं लेकिन अब जो जीवन बचा है उसमें धन, वस्त्र, मकान, व्यापार का योग समाप्त हो चुका है, जिन्हें पुनः स्थापित कर पाना सम्पूर्ण देश और सरकार के समक्ष चुनौती है। इस भूकम्प का केन्द्र इण्डोनेशिया के सुमात्रा द्वीप के पास समुद्र में 10 किलोमीटर की गहराई में बताया गया है जिसकी तीव्रता भारत में रिक्टर स्केल पर 8 एवं अमेरिका के अनुसार 8.9 नापी गई है। इण्डोनेशिया के उत्तरवर्ती सुमात्रा के एकेह तट से चला यह तूफान उत्तर में मुड़ा और हिन्द महासागर में अंडमान द्वीप समूह तक पहुँचा। इस भूकम्प से सुनामी लहर पैदा हुई जिसने श्रीलंका, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया तथा भारत में जो तबाही मचायी, वह वर्णनातीत है। जो जहाँ था वहीं मृतप्राय या मृत पड़ा था। घर टूटकर कहाँ गये, पता ही नहीं चला। हजारों समुद्री नावें बह गयीं। भयंकर जलप्लावन की स्थिति बनी जिसे देखकर कहा जा सकता है कि यह प्राकृतिक विनाश लीला थी जिसने सबकुछ लील लिया। 1964 में अलास्का में आए भूकम्प के बाद का यह सबसे बड़ा भूकम्प था जिसने समुद्र में 20 से 40 फुट ऊँची लहरें उठायीं और मीलों दूर तक जो कुछ था वह समुद्र में समा गया। जो बचा वह या तो मरा था या मरने से भी बड़ी आपदा, व्याधि से ग्रस्त था।

प्रसिद्ध भूगर्भ विद् डॉ.जनार्दन नेगी के अनुसार 'सुनामी' शब्द मूलतः जापानी है जिसका मूल नाम Tsunami ट्सुनामी है। ट्सु का अर्थ बंदरगाह तथा नामी का अर्थ समुद्र है। सुनामी लहरें Tsunami Waves वास्तव में समुद्र में उठने वाली विध्वंसक ज्वारीय (टाइडल) लहरें होती हैं जिनकी गति 750 कि.मी. प्रतिघंटे तक होती है। ये लहरें समुद्र में 6.5 तीव्रता से अधिक का भूकम्प आने पर ही पैदा होती हैं। समुद्र के किनारों पर पहुँच कर ये 12 से 30 मीटर तक ऊँची हो जाती हैं जिससे समुद्र का स्तर लगभग 3 से 5 मीटर ऊपर हो जाता है जिससे तटवर्ती प्रदेशों में भयंकर विध्वंस की स्थिति बनती है।

ज्योतिषविदों के अनुसार पूर्णिमा को समुद्री लहरें बढ़ जाती हैं। पूर्णिमा तिथि के दिन जब चन्द्रमा पृथ्वी के सर्वाधिक निकट होता है तब समुद्र जल तट पर बीस फुट तक आगे बढ़ जाता है। दि. 26 दिस. 04 को संयोग से पूर्णिमा ही थी जिसने विध्वंस की अमावस्या का रूप धारण कर लिया था।

तमिलनाडु के तटवर्ती तीन शहर कुडलूर, नागपट्टिनम् और वेलांगनी लगभग नष्ट हो गये हैं। 60 से अधिक गाँवों का नामोनिशान भी नहीं बचा है। केरल के अलप्पुझा और कोल्लम जिले और आंध्रप्रदेश के काकीनाड़ा और नैल्लो जिले के 300 गाँव, पांडिचेरी का 100 कि.मी.लंबा समुद्री तट, अण्डमान-निकोबार द्वीप बेहद प्रभावित हुए हैं। 8 द्वीपों के सागर में समा जाने और अनेक द्वीपों के जनविहीन हो जाने की खबरें हैं। अण्डमान के एक द्वीप पर एक मानवीय प्रजाति के मात्र 79 लोग बचे हैं जहाँ अभी एक बच्ची ने जन्म लिया है, जिसका नाम 'सुनामी' रखा गया है। यह भविष्य की वह किरण है जो हमें बताती है प्रबल जिजीविषा के आगे प्रबल प्रलय को भी परास्त होना ही पड़ता है। किसी ने ठीक ही कहा है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रधनुष जैसी सतरंगी दुनिया सही सलामत है।

आँखें उजड़ गईं तो क्या है, सपना सही सलामत है॥

हाँ, जो चला गया है वह आयेगा नहीं, किन्तु जो बच गया है उसे सहेजना है। जो मौत के मुँह से बच गये हैं उन्हें जीवन जीने लायक बनाना है ताकि वे फिर जीवन जीने की ओर प्रवृत्त हो सकें। मनुष्य की विशेषता है कि वह दु:ख को क्षणिक मानकर सुख की तलाश करता है किन्तु यह अवसर सामान्य नहीं बल्कि असामान्य है। जब हमें अपनों के काम आना है। हमारे देश के गौरवशाली प्रधानमंत्री डॉ.मनमोहनसिंह ने विदेशी सहायता की पेशकश को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर राहत एवं पुनर्वास की चुनौती को देशवासियों के भरोसे स्वीकार किया है अत: यह हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम 'प्रधानमंत्री राहतकोष' में अपना अधिकाधिक आर्थिक सहयोग भिजवायें ताकि हमारे देश की जिजीविषा और परोपकार भावना को संबल मिल सके।

मेरा सम्पूर्ण जैनसमाज उसकी समस्त सामाजिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों से विनम्र निवेदन है कि वह अपनी भामाशाही छवि को और उज्जवल बनाते हुए इस राष्ट्रीय विपदा/प्राकृतिक आपदा की घड़ी में सार्थक भूमिका निभायें और अपना एवं अपने समाज का नाम रोशन करें। तेरापंथ समाज की ओर से इक्यावन लाख रुपये दान की घोषणा की गई है। समाज के अन्य घटकों को भी इसका अनुकरण करना चाहिए। जहाँ-जहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आयोजित होने वाले हैं वहाँ-वहाँ प्रतिदिन एक बोली का धन भी सुनामी लहर पीड़ितों के नाम किया जाय तो अनेक टूटे-फूटे-उजड़े घर बस सकते हैं। इन महोत्सवों में एक दानपेटी 'सुनामी सहायता' के नाम की रखी और भरी जाये तो जैन और जैनत्व की अहिंसा, जीवदया, परोपकार, करूणा, दानशीलता में एक स्वर्णिम पृष्ठ और जुड़ेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। हमारा तो मानना है-

देख यूँ वक्त की दहलीज से टकरा के न गिर।
रास्ते बंद नहीं सोचने वालों के लिए॥

डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'

फिट रहने के उपाय

- अपनी व्यस्त दिनचर्या में से प्रतिदिन कम से कम पंद्रह मिनिट का समय अपने लिए अवश्य निकालें। यह समय आप आत्मविश्लेषण में लगायें।
- पानी शरीर के लिए अति महत्वपूर्ण है अत: दिनभर में खूब पानी पियें। यह आपके शरीर से विषैले पदार्थों को निकालकर शुद्धिकरण करता है।
- कुछ पल चिंतन के लिए निकालें। यह आपको तनावमुक्त तो करेगा ही, साथ ही आपकी उदासी व आलसीपन को भी दूर भगाने में सहायक होगा।
- सफाई पर संपूर्ण ध्यान दें। शरीर की सफाई के साथ-साथ रसोईघर की सफाई पर भी विशेष ध्यान दें।
- अपने प्रतिदिन के भोजन में विटामिन, खनिज लवण व प्रोटीन तत्वों से युक्त पदार्थों को शामिल करें।

आपके पत्र

दिसम्बर 2004 का 'जिनभाषित' अंक प्राप्त हुआ। सम्पादकीय ''दूरदर्शन पर जिनशासन के चीरहरण का दोषी कौन?'' आद्योपांत पढ़ा। सम्पादक महोदय ने उभयपक्षों का समन्वय लेखनी के द्वारा प्रस्तुत कर अति प्रशंसनीय कार्य किया है। सम्पादक महोदय ने उन सभी पक्षों के यथार्थ परीक्षण हेतु जाँच समिति बनाये जाने की बात लिखी है, जो कि उचित है।

मुझे इस बात का अफसोस है कि शिथिलाचार पर हमारे पत्रकार जितना लिख रहे हैं, रुकने की बात दूर की है, नित प्रति बढ़ ही रहा है। समाज के हर वर्ग को गम्भीरता से विचार कर कुछ सार्थक कदम उठाना चाहिए।

ब्र. संदीप 'सरल'
अनेकान्त ज्ञान मन्दिर, शोध संस्थान, बीना, म प्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दीश्वरद्वीप मढ़ियाजी : एक परिचय

(यह लेख तब लिखा गया था, जब माननीय पं. डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य जीवित थे)

मुनिश्री क्षमासागर जी

भारत वर्ष के केन्द्र में स्थित जबलपुर पुराने और नये मध्यप्रदेश का प्रमुख शहर है। यहाँ की विपुल वनसंपदा, अपरिमित जलराशि और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इस नगर की प्रगति का प्रमुख कारण रही है। स्वतंत्रता संग्राम में अग्रणी त्रिपुरी कांग्रेस की क्रीडास्थली तथा बौद्धिक, धार्मिक और सांस्कृतिक धरातल पर दो-दो विश्वविद्यालय के पीठ और अनेक साहित्यिक गतिविधियों ने इस नगर को सही रूप में 'संस्कारधानी' बनाया है।

यहां जैन धर्म के लगभग चालीस हजार अनुयायी और लगभग 24 दिगम्बर जैनमंदिर विद्यमान हैं। शहर से 7 किलोमीटर दूर पुरवा और त्रिपुरी के बीच एक छोटी सी पहाड़ी है, जो धरातल से 300 फीट ऊँची है। पिसनहारी की मढ़िया इसी पहाड़ी पर है। इसके पार्श्व में मदनमहल की पहाड़ियाँ भी हैं।

इस पिसनहारी की मढ़िया को लेकर एक जनश्रुति है कि जबलपुर नगर की पुरानी बस्ती गढ़ा में एक विधवा माँ रहती थी। वह आटा पीसकर अपना निर्वाह करती थी। एक दिन उसने जैन मुनि का उपदेश सुना। उपदेश सुनकर उसने तभी मन में एक जैन-मंदिर का निर्माण करने का संकल्प कर लिया। जिसने जीवन में दूसरों के समक्ष कभी हाथ नहीं पसारा वह मंदिर के लिए दूसरों से भिक्षा कैसे माँगती। अतः उसने संकल्प कर लिया कि श्रम द्वारा धन संग्रह करके मंदिर निर्माण कराना है। इस संकल्प का संबल लेकर वह दिन रात श्रम करने में जुट गयी और तब एक दिन वह आया जब मंदिर तैयार हो गया। एक निर्धन असहाय अबला के पास इतनी पूँजी कहाँ थी, जिससे वह स्वर्ण कलश चढ़ा पाती। तब उस पुण्यशाली ने अपनी चक्की के दोनों पाट शिखर में चिनवा दिये। जिन पाटों ने उसे जीवन में रोटी दी, जिन पाटों ने उसके संकल्प को मूर्त रूप दिया, वे ही उसकी एकमात्र पूँजी थे। भगवान के लिए उसने अपनी समग्र पूंजी समर्पित कर दी। तभी से इस क्षेत्र का नाम 'पिसनहारी की मढ़िया' हो गया।

पहाड़ी पर बने जिन मंदिरों में सिंहासन पीठ पर उत्कीर्ण प्रतिष्ठा संवत् 1587 इन मंदिरों की प्राचीनता की उद्घोषणा करता है। पहाड़ी पर स्थित सभी जिन मंदिरों के उन्नत शिखर और उनके ऊपर लहराती ध्वजायें बरबस ही हमारा मन आकर्षित कर लेती हैं। यहाँ पर बनायी गयी चौबीसी लगभग चौंतीस-पैंतीस वर्ष पुरानी है।

पर्वत की तलहटी के प्रांगण में बना 'ब्राह्मी विद्या आश्रम' आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के शुभाशीष से सन् 84 में स्थापित हुआ। यहाँ रहकर ब्रह्मचारिणी बहिनें अपने जीवन को संयम से सँवारती और अध्ययन चिंतन, मनन से उसे परिपक्व बनाती हैं। जैनधर्म/ दर्शन में निष्णात होकर सारे देश में भ्रमण करके यथाशक्ति धर्म-प्रभावना करती हैं और आचार्य महाराज की श्रीकृपा से आर्यिकापद प्राप्त स्वपर कल्याण करती हैं।

यहीं पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी की प्रेरणा से स्थापित 'वर्णीगुरु कुल' और 'व्रतीआश्रम' भी उल्लेखनीय है। गुरुकुल में रहकर युवा जैन एक साथ बैठकर धर्मका अध्ययन करते हैं और सदाचार का पालन करते हैं। वर्तमान में डा. पण्डित पन्नालाल जी साहित्याचार्य के सामीप्य में रहकर लगभग दस-बारह युवा अध्ययनरत हैं। व्रती आश्रम में भी त्यागी-व्रती जनों के लिए आवास, भोजन और अध्ययन की सुविधायें उपलब्ध हैं।

विद्यासागर शोध संस्थान की स्थापना सन् 84 में हुई थी। एक समृद्ध लाइब्रेरी और गणितशास्त्र के प्रोफेसर श्री लक्ष्मीचंद जी जैन का निर्देशन इस संस्थान को प्राप्त है।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन प्रशासनिक संस्थान की स्थापना कुण्डलपुर (दमोह) म.प्र. में महावीरजयन्ती 1992 के अवसर पर आचार्य महाराज के सान्निध्य में हुई। उसका संचालन जबलपुर के इसी मढ़ियाजी क्षेत्र में हो रहा है। यह एक अभिनव प्रयोग है। इस संस्थान में प्रतिभाशाली जैनछात्रों को प्रशासनिक सेवाओं में प्रवेश के लिए प्रशिक्षित करने का उद्देश्य है। इसके साथ ही प्रवेश लेने वाले युवाओं में मानवीयता और व्यसनमुक्त अहिंसक जीवनशैली का बीजारोपण करना भी इस संस्थान का उद्देश्य है।

पाण्डुक-शिला-प्रांगण जो मढ़िया जी क्षेत्र के सामने स्थित है, इस संस्थान के संचालन की भूमि बनेगा। छात्रावास का निर्माण भी यहीं होगा। यह पाण्डुकशिला-प्रांगण सन् 1958 में हुए पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में भगवान के जन्माभिषेक की भूमि रहा और 1993 में भी ऐतिहासिक नन्दीश्वरद्वीप-रचना, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंच गजरथ महोत्सव में भगवान के जन्माभिषेक के लिए चुना गया है। यहाँ इस पावन भूमि का वैशिष्ट्य और सौभाग्य है।

आगम में नन्दीश्वर द्वीप

प्रत्यक्ष होने से इस पृथ्वी मण्डल की संरचना तो सर्वविदित है, परन्तु असीम लोक में सुदूर क्षितिज के उस पार फैला हुआ अद्भुत अज्ञात लोक योगियों की सूक्ष्म दृष्टि में ही आ पाता है। जैन, बौद्ध और वैदिक आदि सभी दर्शनकारों ने लोक के बाबत् अपने-अपने ढंग से बहुत कुछ कहा है। आधुनिक वैज्ञानिक भी इस अज्ञात जगत के अन्वेषण में लगे हैं।

जैनदर्शन में निष्णात भूगोलवेत्ता आचार्य भगवन्तों ने कहा है कि अनन्त आकाश के बीच स्थित अनादि-अनिधन और अकृत्रिम लोक है, जो तीन भागों में विभक्त है। मध्यलोक जो असंख्यात द्वीप और समुद्रों से युक्त है, मनुष्य और अन्य छोटे-बड़े जीवों का शरणस्थल है। असीम ऊँचाइयों पर स्थित ऊर्ध्वलोक दैवी सम्पदा से भरा पड़ा है, और नीचे अतल गहराई में पीड़ा से झुलसता नरक है। इन सबकी सत्यता पर प्रश्नचिह्न लगाना जितना आसान है, शायद इनकी सच्चाई को जान पाना उतना ही मुश्किल है।

मध्यलोक के असंख्यात द्वीपसमुद्रों में प्रथम जम्बूद्वीप है, जिसके एक हिस्से में हमारा भारतवर्ष है। मानो एक विशाल कैनवास पर किसी ने एक बिन्दु रख दिया हो। जम्बूद्वीप से आगे जाकर सात समुद्र और छह महाद्वीप पार करने पर आठवाँ महाद्वीप नन्दीश्वर है, जहाँ देवसृष्टियाँ निरन्तर विभिन्न उत्सवों के अवसर पर उतरती और जिनमन्दिरों दिव्यपूजा और अर्चना में लीन रहती हैं। इस महाद्वीप का विस्तार लगभग एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन है।

इस समूचे द्वीप पर चारों दिशाओं में हर दिशा के मध्य में ढोल के समान गोल आकृतिवाला अञ्जनगिरि नामका एक-एक पर्वत अपनी श्याम-नील वर्ण वाली आभा बिखेरता शोभित होता है। आप देखना चाहें तो पर्वत की चारों दिशाओं में लगभग एक-एक लाख योजन जाकर देखें कि वापिकायें कितनी सुन्दर हैं। पूर्व दिशा में जाने पर नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा वापिकायें है। दक्षिण की ओर जाइये तो अरजा, विरजा, गतशोका और वीतशोका नाम की वापिकायें दिखने लगती हैं। पश्चिम दिशा में आगे बढ़िये, ये रहीं विजया, वैजयंती, जयंती और अपराजिता वापिकायें। ये रहीं उत्तर दिशा में रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा वापिकायें। सब ओर फैली प्रकृति का सौन्दर्य कितना अद्भुत है। एक हजार योजन अवगाहना वाली इन वापिकाओं की अथाह जलराशि बरबस ही मन को मोहित कर लेती हैं।

प्रत्येक वापी के चारों ओर अशोक, सप्तच्छ, चम्पक और आम्र वृक्षों से पल्लवित और पुष्पित वनों का सौरभ हवाओं में मानो रस ही भर देता है। इस तरह द्वीप के प्रत्येक दिशा में चार वापिकायें ओर सोलह वन हैं। चारों दिशाओं में सोलह वापिकायें और चौसठ वन हैं। इतना ही नहीं हर वापिका के बीच एक फेनिल दुग्ध सा धवल उज्ज्वल दधिमुख पर्वत है। प्रत्येक वापिका के दोनों कोणों पर उगते सूरज की लालिमा लिये दो रतिकर पर्वत हैं। लगता है देखते-देखते थक गये आप, चलिये थोड़ा विश्राम कर लीजिये। सोचिये, इस तरह इस द्वीप में प्रत्येक दिशा में एक अंजनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर पर्वत हैं। अंजनगिरि सबसे ऊँचा है। मानिये, लगभग चौरासी हजार योजन ऊँचे हैं। चारों दिशाओं में कुल मिलाकर चार अंजनगिरि, सोलह दधिमुख और बत्तीस रतिकर पर्वत यानी सब बावन पर्वत हुए।

चलिये, अब मन बना लीजिये। इन पर्वतों पर बने बावन भव्य जिनप्रतिमाओं से युक्त बावन अकृत्रिम और अविनाशी जिनमंदिरों के दर्शन कर लें। ये ऊँचे-ऊँचे मंदिर सचमुच कितने ऊँचे हैं। इनकी ऊँचाई पचहत्तर योजन है। लंबाई सौ योजन और चौड़ाई पचास योजन है। आओ, इसके सोलह योजन ऊँचे और आठ योजन चौड़े द्वार से भीतर प्रवेश करें। पूरा मंदिर स्वर्णमय है। वन, उपवन, तोरण, वेदिका, चैत्यवृक्ष, मानस्तम्भ, श्रेष्ठमण्डपों और दस प्रकार की ध्वजाओं से शोभित हैं। अभिषेक, प्रेक्षणिका, क्रीडांगन संगीत- नाट्यगृहों से युक्त है। दूर-दूर तक झन-झन की आवाज करने वाले घण्टाओं के समूह, हवाओं में सौरभ बिखेरते भव्य धूपदान, रत्नमयी सिंहासन, छत्र, चमर, तालव्यंजन और दर्पण की शोभा अद्भुत है।

वह देखो दूर आकाश से सारस, हँस, मोर और पुष्पक आदि विमानों पर आरूढ़ होकर देवगण इस द्वीप में उतर रहे हैं। हाथों में दिव्यफल और दिव्यपुष्प आदि पूजा की सामग्री लेकर आये हैं। इनके दिव्य आभूषणों, ध्वजाओं और वादित्रों की गूँज से सारा आकाश चमक-दमक उठा है। ये लोग यहाँ हमेशा प्रतिवर्ष की आषाढ़, कार्तिक तथा फाल्गुन मास की अष्टमी से लेकर पूर्णिमा तक निरन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक दिशा में दो-दो प्रहर तक नन्दीश्वर आदि महापूजायें करते हैं। इस महापूजा में सौधर्म इन्द्र प्रमुख होता है। वही सभी प्रतिमाओं का अभिषेक करता है। शेष सभी इन्द्र अभिषेक और पूजा में सौधर्म इन्द्र की मदद करते हैं। इन सभी की देवियाँ आठ मंगलद्रव्यों को धारण करती हैं। अप्सरायें भक्तिभाव से नृत्य करती हैं और शेष सारे देव अभिषेक प्रेक्षणिका में खड़े होकर इस उत्सव को देखने के लिए आतुर रहते हैं।

पूजा होने पर सभी इन्द्र अपने परिवार सहित सभी जिनमन्दिरों की परिक्रमा करके ढाईद्वीप सम्बन्धी पाँचों मेरु पर्वतों की चारों दिशाओं में स्थित अस्सी भव्य जिन मंदिरों की परिक्रमा, पूजा, वन्दनाविधि सम्पन्न करते हैं और वापिस स्वर्गलोक में लौट जाते हैं। यह पूजा उनके सातिशय पुण्य का कारण बनती है। हम चाहें तो इस नन्दीश्वरद्वीप में हर अष्टाह्निका पर्व में पूजा वन्दना करके सातिशय पुण्य अर्जित कर सकते हैं।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पिसनहारी मढिया, जबलपुर (म.प्र.) के प्रांगण में नवनिर्मित विशाल एवं भव्य नंदीश्वरद्वीप-जिनालय संगमरमर और ग्रेनाइट से सजाया गया है। लगभग एक सौ दस फीट व्यास वाले गुम्बज में एक भी आधार स्तम्भ नहीं है और इस विशाल गुम्बज के नीचे 132 जिनबिम्ब, 52 जिनालय और 5 सुमेरु पर्वतों की संरचना अपने आप में अद्‌भुत है। जमीन से 26 फीट ऊँचाई पर बने जिनालय और इस पर 55 फीट ऊँचे गुम्बज और स्वर्णकलश से शोभित 30 फीट ऊँचा शिखर इस तरह कुल मिलाकर 121 फीट ऊँचा यह गगनचुम्बी द्वीप अद्वितीय है। जिनालय के भीतरी भाग की परिक्रमा परिधि 304 फीट है। जो सब तरफ 10 फीट चौड़ी है। बाहर का परिक्रमा पथ लगभग 400 फीट की परिधिवाला है और सब ओर 15 फीट चौड़ा है।

चार द्वारों पर अत्यन्त सुन्दर चार तोरण शिखर हैं। ऊपर जाने वाली संगमरमर की सीढ़ियों के दोनों ओर लगाई रेलिंग मन मोह लेती है। जिनालय के भीतरी भाग में 52 ढोल के समान आकृतिवाले गोलाकार पर्वतों को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। चारों प्रवेश द्वारों के समक्ष स्तम्भों पर संगमरमर पर उत्कीर्ण प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव, अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर, प्रमुख आचार्य कुन्दकुन्द और तपोनिष्ठ आचार्य विद्यासागर जी महाराज की वीतराग छवि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अनुराग जगाने में सक्षम हैं।

इस समूची रचना को चारों ओर से आच्छादित करने वाला मनोरम उद्यान कृत्रिमता के बीच भी प्राकृतिक सौंदर्य का आभास देता है। लगता है क्षणभर को स्वर्ण की देहरी पर खड़े होकर हमने समूचा स्वर्ग ही देख लिया हो।

शीतकालीन शिविरों का भव्य आयोजन

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर, जयपुर द्वारा प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी महाकवि ज्ञानसागर छात्रावास में शीतकालीन अवकाश में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया गया। जिसके अन्तर्गत प्रातः बी.डी.मण्डल साहब द्वारा योग शिक्षण शिविर, श्री दिनेश गंगवाल द्वारा वास्तु शिक्षण शिविर एवं श्री राधाबल्लभ द्वारा संस्कृत संभाषण का अभ्यास कराया गया। साथ में शारीरिक विकास के लिए क्रीड़ा प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया। इस तरह 25 दिसंबर 2004 से 02 जनवरी 2005 तक आयोजित शिविरों में सफल समापन एवं पुरस्कार वितरण संस्थान के कोषाध्यक्ष श्री ऋषभ जी जैन, संस्थान के अधिष्ठाता श्री पं. रतनलाल जी बैनाड़ा एवं उप अधिष्ठाता श्री राजमल जी बेगस्या द्वारा किया गया।

'पं. मनोज शास्त्री भगवां'

गया नगर में अभूतपूर्व धर्म प्रभावना

पर्वराज पर्यूषण में श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर से पधारे विद्वान पं. प्रकाशचन्द्र जी पहाड़िया एवं विदुषी श्रीमती पहाड़िया द्वारा दशधर्म, तत्त्वार्थसूत्र इष्टोपदेश का रसास्वादन कराया गया। समाज में पहाड़िया जी की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। समाज ने संस्थान को 1 लाख 16 हजार रुपये सहयोग राशि भेंट की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूजन विधि

सिद्धान्ताचार्य पं. हीरालाल जी शास्त्री

पूजन का अर्थ और भेद

जिनेन्द्रदेव, गुरु, शास्त्र, रत्नत्रय धर्म आदि की आराधना, उपासना या अर्चा करने को पूजन कहते हैं। आचार्य वसुनन्दि ने पूजन के छह भेद गिनाकर उसका विस्तृत विवेचन किया है। (देखो, श्रावकाचार संग्रह भाग 1 पृष्ठ 464-476, गाथा 381 से 493 तक)। छह भेदों में एक स्थापना पूजा भी है। साक्षात् जिनेन्द्रदेव या आचार्यादि गुरुजनों के अभाव में उनकी स्थापना करके जो पूजा की जाती है उसे स्थापना पूजा कहते हैं। यह स्थापना दो प्रकार से की जाती है, तदाकार रूप से और अतदाकार रूप से। जिनेन्द्र का जैसा शान्त वीतराग स्वरूप परमागम में बताया गया है, तदनुसार पाषाण, धातु आदि को मूर्ति बनाकर प्रतिष्ठा-विधि से उसमें अर्हन्तदेव की कल्पना करने को तदाकार स्थापना कहते हैं। इस प्रकार से स्थापित मूर्ति को लक्ष्य करके, या केन्द्र-बिन्दु बनाकर जो पूजा की जाती है, उसे तदाकार स्थापना पूजन कहते हैं? इस प्रकार के पूजन के लिए आचार्च सोमदेव ने प्रस्तावना, पुराकर्म, स्थापना, सन्निधापन, पूजा और पूजा-फल इन छह कर्तव्यों का करना आवश्यक बताया है? यथा-

प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना सन्निधापनम्।
पूजा पूजाफलं चेति षड्विधं देवसेवनम्॥

(श्रावकाचार संग्रह भाग 1 पृष्ठ 180 श्लोक 495)

पूजन के समय जिनेन्द्र-प्रतिमा के अभिषेक की तैयारी करने को **प्रस्तावना** कहते हैं। जिस स्थान पर अर्हद्बिम्ब को स्थापित कर अभिषेक करना है, उस स्थान की शुद्धि करके जलादिक से भरे हुए कलशों को चारों ओर कोणों में स्थापना करना **पुराकर्म** कहलाता है। इन कलशों के मध्यवर्ती स्थान में रखे हुए सिंहासन पर जिनबिम्ब के स्थापन करने को **स्थापना** कहते हैं। 'ये वही जिनेन्द्र हैं, यह वही सिंहासन है, यह वही साक्षात् क्षीरसागर का जल कलशों में भरा हुआ है, और मैं साक्षात् इन्द्र बनकर भगवान् का अभिषेक कर रहा हूँ', इस प्रकार की कल्पना करके प्रतिमा के समीपस्थ होने को **सन्निधापन** कहते हैं। अर्हत्प्रतिमा की आरती उतारना, जलादिक से अभिषेक करना, अष्टद्रव्य से अर्चा करना, स्त्रोत पढ़ना, चँवर ढोरना गीत, नृत्य आदि से भगवद्भक्ति करना यह **पूजा** नाम का पाँचवाँ कर्तव्य है। जिनेन्द्र-बिम्ब के पास स्थित होकर इष्ट प्रार्थना करना कि हे! देव, सदा तेरे चरणों में मेरी भक्ति बनी रहे, सर्वप्राणियों पर मैत्री भाव रहे, शास्त्रों का अभ्यास हो, गुणी जनों में प्रमोद भाव हो, परोपकार में मनोवृत्ति रहे, समाधिमरण हो, मेरे कर्मों का क्षय और दु:खों का अन्त हो, इत्यादि प्रकार से इष्ट प्रार्थना करने को पूजा फल कहा गया है। (देखो, श्रा.सं. भाग 1 पृष्ठ 180 आदि, श्लोक 496 आदि)

पूजा फल के रूप में दिये गये निम्न श्लोकों से एक और भी तथ्य पर प्रकाश पड़ता है। वह श्लोक इस प्रकार है-

प्रातर्विधिस्तव पदाम्बुजपूजनेन,
मध्याह्नसन्निधिरयं मुनिमाननेन।
सायंतनोऽपि समयो मम देव,
यायान्नित्यं त्वदाचरणकीर्तनकामितेन॥

(श्रा.सं. भाग 1 पृष्ठ 185 श्लोक 529)

अर्थात् - हे देव, मेरा प्रात:काल तेरे चरणों की पूजा से, मध्याह्नकाल मुनिजनों के सन्मान से और सायंकाल तेरे आचरण के संकीर्तन से नित्य व्यतीत हो।

पूजा-फल के रूप में दिये गये इस श्लोक से यह भी ध्वनि निकलती है कि प्रात:काल अष्ट द्रव्यों से पूजन करना पौर्वाह्निक पूजा है, मध्याह्नकाल में मुनिजनों को आहार आदि देना माध्याह्निक पूजा है और सायंकाल के समय भगवद्-गुण कीर्तन करना अपराह्निक पूजा है। इस विधि से त्रिकाल पूजा करना श्रावक का परम कर्तव्य है और सहज साध्य है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि आह्वानन, स्थापन और सन्निधीकरण का आर्षमार्ग यह था, पर उस मार्ग के भूल जाने से लोग आजकल यद्वा-तद्वा प्रवृत्ति करते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

तदाकार स्थापना के अभाव में अतदाकार स्थापना की जाती है। अतदाकार स्थापना में प्रस्तावना, पुराकर्म आदि नहीं किये जाते, क्योंकि जब प्रतिमा ही नहीं है, तो अभिषेक आदि किसका किया जायगा? अत: पवित्र पुष्प, पल्लव, फलक, भूर्जपत्र, सिकता, शिलातल, क्षिति, व्योम या हृदय में अर्हन्तदेव की अतदाकार स्थापना करनी चाहिए। वह अतदाकार स्थापना किस प्रकार करनी चाहिए, इसका वर्णन आचार्य सोमदेव ने इस प्रकार किया है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हन्ततनुमध्ये दक्षिणतो गणधरस्तथा पश्चात्।
श्रुतगीः साधुस्तदनु च पुरोऽपि दृगवगवृत्तानि॥
(448)

भूर्जे, फल के सिचये शिलातले सैकते क्षितौ व्योम्नि।
हृदये चेति स्थाप्याः समयसमाचारवेदिभिर्नित्यम्॥
(449)

(देखो श्रा.सं. भाग 1 पृष्ठ 173)

अर्थात् - भूर्जपत्र आदि पवित्र बाह्य वस्तु में या हृदय के मध्य भाग में अर्हन्त को, उसके दक्षिण भाग में गणधर को, पश्चिम भाग में जिनवाणी को, उत्तर में साधु को और पूर्व में रत्नत्रय रूप धर्म को स्थापित करना चाहिए। यह रचना इस प्रकार होगी -

रत्नत्रयधर्म

साधु **अर्हन्तदेव** **गणधर**

जिनवाणी

इसके पश्चात् भावात्मक अष्टद्रव्य के द्वारा क्रमशः देव, शास्त्र, गुरु और रत्नत्रय धर्म का पूजन करे। तथा दर्शनभक्ति, ज्ञानभक्ति, चारित्रभक्ति, पंचगुरुभक्ति, सिद्धभक्ति, आचार्यभक्ति और शान्तिभक्ति करे। आचार्य सोमदेव ने इन भक्तियों के स्वतंत्र पाठ दिये हैं। शान्तिभक्ति का पाठ इस प्रकार है -

भवदुःखानलशान्तिधर्मामृतवर्षजनितजनशान्तिः।
शिवशर्मास्त्रवशान्तिः शान्तिकरः स्ताज्जिनः शान्तिः॥

(481, श्रा.सं.-भाग 1, पृष्ठ 178)

यह पाठ वर्तमान में प्रचलित शान्तिपाठ की याद दिला रहा है।

उपर्युक्त तदाकार और अतदाकार पूजन के निरूपण का गंभीरतापूर्वक मनन करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि वर्तमान में दोनों प्रकार की पूजन-पद्धतियों की खिचड़ी पक रही है, और लोग यथार्थ मार्ग को बिलकुल भूल गये हैं।

निष्कर्ष- तदाकार पूजन द्रव्यात्मक और अतदाकार पूजन भावात्मक है। गृहस्थ सुविधानुसार दोनों कर सकता है। पर आचार्य वसुनन्दि और गुणभूषण इस हुंडावसर्पिणीकाल में अतदाकार स्थापना का निषेध करते हैं। वे कहते हैं कि लोग यों ही कुलिंगियों के यद्वा-तद्वा उपदेश से मोहित हो रहे हैं, फिर यदि ऐसी दशा में अर्हन्मतानुयायी भी जिस किसी वस्तु में अपने इष्ट देव की स्थापना कर उसकी पूजा करने लगेंगे, तो साधारण लोगों से विवेकी लोगों में कोई भेद न रह सकेगा। तथा सर्वसाधारण में नाना प्रकार के सन्देह भी उत्पन्न होंगे। (श्रा.सं. भाग 1 पृष्ठ 464 गाथा 385)

यद्यपि आचार्य वसुनन्दिका अतदाकार स्थापना न करने के विषय में तर्क या दलील है तो युक्ति-संगत, पर हुंडावसर्पिणी का उल्लेख किस आधार पर कर दिया, यह कुछ समझ में नहीं आया? खासकर उस दशा में, जब कि उनके पूर्ववर्त्ती आचार्य सोमदेव बहुत विस्तार के साथ उसका प्रतिपादन कर रहे हैं। फिर एक बात और विचारणीय है कि क्या पंचम काल का ही नाम हुंडावसर्पिणी है, या प्रारंभ के चार कालों का नाम भी है। यदि उनका भी नाम है, तो क्या चतुर्थकाल में भी अतदाकार स्थापना नहीं की जाती थी? यह एक प्रश्न है, जिस पर कि विद्वानों द्वारा विचार किया जाना आवश्यक है।

उमास्वामिश्रावकाचार, धर्मसंग्रह श्रावकाचार और लाटीसंहिता में पूजन के पाँच उपचार बतलाए हैं- आवाहन, स्थापन, सन्निधिकरण, पूजन और विसर्जन। इन तीनों ही श्रावकाचारों में स्थापना के तदाकार और अतदाकार भेद न करके सामान्य रूप से पूजन के उक्त पाँच प्रकार बतलाये हैं। फिर भी जब सोमदेव-प्ररूपित उक्त छह प्रकारों को सामने रखकर इन पाँच प्रकारों पर गम्भीरता से विचार करते हैं, तब सहज में ही यह निष्कर्ष निकलता है कि ये पाँचों उपचार अतदाकार स्थापना वाले पूजन के हैं, क्योंकि अतदाकार या असद्भावस्थाना में जिनेन्द्र के आकार से रहित ऐसे अक्षत- पुष्पादि में जो स्थापना की जाती है, उसे अतदाकार या असद्भाव स्थापना कहते हैं। अक्षत-पुष्पादि में जिनेन्द्रदेव का संकल्प करके '**हे जिनेन्द्र, अत्र अवतर, अवतर**' उच्चारण करके आह्वानन करना, '**अत्र तिष्ठ तिष्ठ**' बोलकर स्थापन करना और 'अत्र मम सान्निहितो भव' कहकर सन्निधिकरण करना आवश्यक है। तदनन्तर जलादि द्रव्यों से पूजन करना चौथा उपचार है। पुनः जिन अक्षत-पुष्पादि में जिनेन्द्रदेव की संकल्पपूर्वक स्थापना की गई है उन अक्षत-पुष्पादि का अविनय न हो, अतः संकल्प से ही विसर्जन करना भी आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार अतदाकार स्थापना में यह पञ्च उपचार सुघटित एवं सुसंगत हो जाते हैं इस कथन की पुष्टि प्रतिष्ठा दीपक के निम्न-लिखित श्लोकों से होती है-

साकारा च निराकारा स्थापना द्विविधा मता।
अक्षतादिनिराकारा साकारा प्रतिमादिषु॥ 1॥
आह्वानं प्रतिष्ठानं सन्निधीकरणं तथा।
पूजा विसर्जनं चेति निराकारे भवेदिति॥ 2॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साकारे जिनबिम्बे स्यादेक एवोपचारकः।
स चाष्टविध एवोक्तं जल-गन्धाक्षतादिभिः ॥ 3 ॥

अर्थ- स्थापना दो प्रकार की मानी गई है। साकारस्थापना और निराकारस्थापना। प्रतिमा आदि में साकार स्थापना होती है और अक्षत-पुष्पादि में निराकार स्थापना होती है। निराकार स्थापना में आह्वानन, स्थापन, सन्निधीकरण, पूजन और विसर्जन ये पाँच उपचार होते हैं। किन्तु साकार स्थापना में जल, गन्ध, अक्षत आदि अष्ट प्रकार के द्रव्यों से पूजन करने रूप एक ही उपचार होता है।

इन सब प्रमाणों के प्रकाश में यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वर्तमान में जो पूजन-पद्धति चल रही है, वह साकार और निराकार स्थापना की मिश्रित परिपाटी है। विवेकी जनों को उक्त आगममार्ग से ही पूजन करना चाहिए।

अतएव निराकार पूजन के विसर्जन में '**आहूता ये पुरा देवा**' इत्यादि श्लोक न बोलकर '**संङ्कल्पित जिनेन्द्रान् विसर्जयामि**' इतना मात्र बोलकर पुष्प-क्षेपण करके विसर्जन करना चाहिए। **क्रमशः**

श्रावकाचार संग्रह (चर्तुथ भाग) से साभार

सम्यक्त्ववर्द्धिनी ज्ञान प्रतियोगिता का परिणाम

पर्वाधिराज पर्यूषण 2004 के उपलक्ष्य पर श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर द्वारा प्रकाशित सम्यक्त्व वर्द्धिनी ज्ञान प्रतियोगिता आयोजित की गयी थी। जिसमें लगभग 4000 प्रतियोगियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया था। जिसमें प्रथम स्थान-घंसौर की बहिन प्रज्ञा जैन, द्वितीय स्थान-संदीप कुमार जैन, नलवाड़ी (आसाम), तृतीय स्थान-राकेश जैन, कुलुवा (म.प्र.) ने प्राप्त किया है। सांत्वना पुरस्कार 100 लोगों को दिया गया। प्रतियोगिता के उत्तर इसप्रकार हैं-

1. माघवदी 14	28. सनतकुमार चक्रवर्ती	55. गुणावा जी	82. झूठ
2. आत्मज्ञान से	29. ब्रह्मचर्याणुव्रत	56. 19	83. ओम
3. इच्छानिरोध से	30. प्रद्युम्न कुमार	57. हस्तिनापुर	84. 3
4. श्रावण बदी 1	31 समुद्रदत्त सेठ	58. 2	85. दीपावली
5. नारद	32. भामण्डल	59. श्रवणबेलगोला	86. रवीन्द्र जैन
6. मांगीतुंगी	33. चन्द्रमति	60. गजपुर	87. केशरिया
7. गिरनार जी से	34. 3 पल्य	61. केशोरायपाटन	88. त्रिशलादेवी
8. कमलावती	35. मदालसा	62. पं.बनारसीदास जी	89. 12
9. कनकमती	36. अनंगसरा	63. 1	90. 357
10. नाभिराय व बाहुबली	37. कुबेर	64. छहढाला	91. विग्रहगति में
11. इनमें से कोई नहीं	38. आलापद्धति	65. सिद्धचक्र	92.170
12. आचार्य समन्तभद्र	39. 6 वें में	66. पाँचवे स्वर्ग तक	93. 8 वर्ष अन्तर्मुहूर्त
13. कुन्दलता	40. नपुंसक लिङ्ग	67. स्वयंभूरमणद्वीप	94. अनुप्रेक्षा
14. आचार्य	41. आगरा	68. 45 लाख योजन	95. श्वासोच्छवास
15. बलभद्र	42. आचार्य ज्ञानसागर जी	69. उड़ीसा	96. पृथक्त्व वितर्क
16. ध्यान	43. वैक्रियिक	70. 3	97. 70 कोड़ाकोड़ी
17. राजुल	44. नौकर्माहार	71. 1995	98. पाठशाला
18. 458	45. आकाश द्रव्य	72. अजमेर	99. 3
19. विजया सेठानी	46. 12 वें तक	73. 5 इन्द्रिय	100. वात्सल्य
20. 64	47. जबलपुर	74. सोमासती	101. चरणानुयोग
21. बसंततिलका	48. सुधासागर जी	75. नवधाभक्ति	102.आचार्य ज्ञानसागर
22. आचार्य पूज्यपाद	49. सम्मूर्छन जन्म	76. शेरपर्याय में	103. 10 अक्टूबर, 1946
23. कुलभूषण-देशभूषण	50. एकेन्द्रिय जीव	77. सुमेरू पर्वत	104. 525 धनुष
24. कमलोत्सवा	51. धर्मध्यान	78. पेड़	105. कोई भी नहीं
25. आचार्य अकंलक	52. कवि द्यानतराय	79. तत्वार्थसूत्र	106. सौधर्मेन्द्र
26. मुनि भीम	53. द्रोणगिर जी	80. आलापपद्धति	107. कुण्डलपुर (वैशाली)
27. गुप्ति-सुगुप्ति	54. जयपुर	81. भक्तामर स्त्रोत	108. कुण्डलपुर

ब्र.भरत जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जल में जीवत्व : सार्थक कदम का इन्तजार

डा. अनिल कुमार जैन

''जिनभाषित'' के अक्टूबर 2004 के अंक में प्रकाशित श्री प्रभुनारायण मिश्र का लेख ''जल सोचता, अनुभव करता और व्यक्त करता है'' रोचक है, लेकिन इसे जल में जीवत्व की सिद्धि के लिए प्रभावक कदम मानना शायद उचित न होगा। इसके लिए अभी बहुत अधिक शोध की आवश्यकता है। जल के ऊपर इस प्रकार के अनेक प्रयोग विश्वभर में चल रहे हैं जिनका विस्तृत विवरण इन्टरनैट के जरिए आसानी से प्राप्त करा जा सकता है। इनके मूल में क्या है, यह जानना जरूरी है।

प्रत्येक सजीव और निर्जीव के चारों ओर एक विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र होता है जिसे Aura या आभामण्डल भी कहते हैं। सजीव और निर्जीव के आभामण्डल में एक मूलभूत अन्तर पाया जाता है। सजीव का आभामण्डल (विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र) समय के साथ-साथ बदलता रहता है, जबकि निर्जीव का आभामण्डल स्थिर होता है। किर्लियन फोटोग्राफी द्वारा इनके चित्र भी लिए जा चुके हैं। सजीव (उदाहरण के तौर पर मनुष्य) के आभामण्डल में परिवर्तन होते रहने का एक विशेष कारण है। मनुष्य जैसा सोचता है तथा जैसा व्यवहार करता है उसी के अनुरूप उसका विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र बनता-बिगड़ता रहता है। जैसे उसके भाव होंगे, उसी के अनुरूप उसका विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र होगा। इस विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र को हम तैजस शरीर के रूप में भी ग्रहण कर सकते हैं।

चूँकि आभामण्डल की प्रकृति विद्युत-चुम्बकीय होती है, अत: ये अपने में से बहुत मंद तीव्रता के फोटोन कण भी उत्सर्जित करते रहते हैं, जो कि पौद्गलिक होते हैं। एक विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र दूसरे विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र पर अपना प्रभाव डालते रहते हैं। जब कोई मनुष्य अच्छे विचारों के साथ किसी निर्जीव (जैसे-पानी) को ले जा रहा होता है, तो उस पानी पर एक विशेष प्रकार की छाप छोड़ता है, जिसे Signature भी कहा जाता है। यह छाप कुछ इस प्रकार की होती है, जिससे पानी के विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र में एक सुन्दर चित्र बन सके। और यदि कोई बुरे भावों से इस जल को ले जा रहा है, तो उस पर कुछ इस प्रकार की छाप बनेगी कि वह कुरूप और विकृत दिखे। उक्त लेख में कुछ इस प्रकार के प्रभाव का ही वर्णन किया गया है।

पानी के विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र (आभामण्डल) पर मात्र सजीव ही अपना प्रभाव डाल सकते हैं, ऐसा नहीं है। उसे कृत्रिम तरीके से भी प्रभावित किया जा सकता है। एक विदेशी कंपनी ने एक उपकरण बनाया है, जिसका नाम रखा है-एक्वा वोर्टेक्स (Aqua vortex)। यह महँगा भी नहीं है। इसमें मुख्यत: स्पाइरल आकार का किसी धातु का पाइप होता है। यदि साधारण जल को इस पाइप में से प्रवाहित कराया जाय, तो उनकी (कंपनी की) भाषा में यह जल जीवन्त हो उठता है। क्योंकि इस जल का विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र एक विशिष्ट आकृति प्राप्त कर लेता है। इस जल में ऊर्जा की मात्रा अधिक हो जाती है तथा पीने के बाद मन को सन्तुष्टी देता है। दो जर्मन वैज्ञानिकों- Wolfram तथा Theodor schwrak ने 'drop picture method' द्वारा अलग-अलग जल के फोटो लिए। साधारण जल में मात्र छितरे हुए बिंदु ही आये, जबकि एक्वा वोर्टेक्स से प्राप्त जीवन्त जल का सुंदर सा चित्र आया। (चित्र संलग्न है)। यदि इस जीवन्त जल में कुछ अशुद्धि हो, तो सुन्दर आकृति विकृत होने लगती है।

जैन दर्शन में तैजस वर्गणाओं की विस्तृत चर्चा मिलती है। इन पर अच्छी तरह विचार करने पर उक्त सभी प्रयोगों का स्पष्टीकरण हो जाता है। तैजस-वर्गणाओं द्वारा कई उन बातों की व्याख्या भी संभव है जिनका प्रचलन भारतीय परंपराओं में सदियों से चला आ रहा है और उन्हें मात्र रूढ़ी तथा अवैज्ञानिक मानकर छोड़ दिया जाता है।

एक निवेदन- आज के वैज्ञानिक युग में यह आवश्यक प्रतीत होने लगा है, कि जैन लोग अपनी एक प्रयोगशाला स्थापित करें, जिसमें विभिन्न जैन मान्यताओं को प्रायोगिक रूप में आम लोगों को दिखाया जा सके तथा जैन सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता स्थापित की जा सके। दिगम्बर सम्प्रदाय में पंच कल्याणकों, विधानों और चातुर्मासों में कुल मिलाकर अनुमानत: सौ करोड़ रुपये प्रति वर्ष तो खर्च होता ही होगा। यदि नव निर्माण आदि के खर्चे को और जोड़ लें, तो यह राशि कहीं काफी अधिक बैठेगी। यदि इस राशि का सौवां हिस्सा इस दिशा में खर्च किया जाये, तो मैं समझता हूं कि वह कहीं अधिक सार्थक सिद्ध होगा। हम अपनी आने वाली पीढ़ी को जैन-सिद्धांतों को प्रत्यक्ष प्रयोगशाला में सिद्ध करके दिखा सकेंगे। श्वेताम्बर-मूर्तिपूजक-सम्प्रदाय तथा तेरापंथ-सम्प्रदाय में इस प्रकार के कदम उठाये जा चुके हैं। यदि कोई दिगम्बर सन्त इस कार्य में रूचि दिखाये तो यह एक अभिनन्दनीय कदम होगा।

SST, NEW BUILDING, ONGC, NAZIRA-785685 (ASSAM).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रात्रिभोजन निषेध : वैज्ञानिक एवं आरोग्य मूलक विश्लेषण

प्राचार्य निहालचंद जैन

श्रावक की पहचान तीन बातों से है-देवदर्शन, स्वच्छ वस्त्र से जल छानकर पीना और रात्रिभोजन त्याग। श्रावकों द्वारा व्रतों के पालन करने का मूल उद्देश्य होता है, अहिंसा धर्म की रक्षा करना।

सागार (श्रावक) हो अथवा अनगार (साधु) दोनों को ही व्रतों की रक्षा के लिए अनस्तमित अर्थात् दिवा भोजन नामक व्रत का पालन करना आवश्यक है।

सागारे वाऽनगारे वाऽनस्तमितमणुव्रतम्।

समस्तव्रत रक्षार्थं स्वर व्यंजन भाषितम्॥[1]

संसार में वही श्रावक है, वही कृति और बुद्धिमान है जो त्यागपूर्वक व्रताचरण में जीवन व्यतीत करता है। श्रावक के मूलगुणों में स्थूल रूप से रात्रिभोजन का त्याग करना, अनुभव और आगम से सिद्ध है। श्रावक के व्रतों का आरोहण उत्तरोत्तर ग्यारह प्रतिमाओं के अनुपालन करने में है। व्रतों में प्रवेश रात्रि भोजन निषेध से ही प्राप्त होता है। प्रथम दार्शनिक प्रतिमा में अन्नादिक स्थूल भोजनों का त्याग कहा है और इसमें रात्रि को औषधीय रूप जल आदि ग्रहण किया जा सकता है।

निषिद्धमन्नमात्रादि स्थूल भोज्य व्रते दृशः।

न निषिद्धं जलाद्यन्न ताम्बूलाद्यपि वा निशि॥ [2]

वस्तुतः पहली प्रतिमा को धारण करने वाला श्रावक अव्रती है। इसलिए वह पाक्षिक श्रावक कहलाता है। क्योंकि वह व्रतों को धारण करने के पक्ष में रहता है। रात्रिभोजन निषेध, जैन कुल परंपरा से चली आ रही कुल क्रिया है। बिना रात्रिभोजन त्याग के किसी भी व्रत को धारण करने का पक्ष स्वीकार नहीं। सचमुच रात्रिभोजन निषेध व्रतों के अनुशीलन का मंगलाचरण है। [3]

रात्रि में भोजन करने वालों के अनिवार्य रूप से हिंसा होती है। अत्याग में राग भाव के उदय की उत्कृष्टता होती है। जैसे अन्नग्रास की अपेक्षा मांस ग्रास खाने वाले को अधिक राग होता है। अतः रात्रि भोजी हिंसा का परिहार कैसे कर सकेगा। कृत्रिम प्रकाश में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हो जाती है, जो भोज्य पदार्थों में अनिवार्यतः मिल जाते हैं। अहर्निश भोजी पुरुष राग की अधिकता के कारण अवश्य हिंसा करता है। [4]

प्रतिमाओं के प्रसंग में छठी प्रतिमा रात्रि भुक्ति त्यागी की होती है। जिसमें श्रावक अन्न, अन्न पान, खाद्य, लेह इन चारों प्रकार के आहार को ग्रहण नहीं करता है।

अन्नं पानं, खाद्यं लेहं, नाश्नाति यो विभावर्याम्।

स च रात्रि भुक्ति विरतः सत्वेष्वनुकम्पमानमनाः॥

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

स्वामिकार्तिकेयानुपेक्षागत श्रावक धर्म में कहा गया है कि छठी प्रतिमाधारी श्रावक दाल, भात आदि खाद्य, मिष्ठान्न आदि स्वाद, चटनी आदि लेह और पानी, दूध, शरबत आदि पेय पदार्थों का रात्रि में भोजन न स्वयं करता है और न ही दूसरों को कराता है। क्योंकि वह सभीप्रकार के आरंभ का त्यागी होता है।

जो चउविंह पि भोज्जं रयणीए णेव भुंजदे णाणी।

पायं भुंजावदि अण्णं, णिसिविरओ सो हवे भोज्जो॥ 81॥ [5]

रात्रिभोजन के दोष

1. रात्रि में निम्नांकित जीवन के व्यापारादि और क्रियाएं वर्जनीय हैं फिर रात्रिभोजन क्यों?

अ. सूक्ष्म जंतुओं का समूह स्पष्ट और अस्पष्ट दिखाई नहीं देता है।

ब. कोई वस्तु अंधेरे में स्पष्ट न दिखने से त्यागी वस्तु के खा लेने का दोष लगता है।

स. साधु वर्ग विचरण नहीं करते तथा रात्रि में देव व गुरु पूजा नहीं की जाती।

द. संयमी पुरुष गमनागमन नहीं करते।

इ. श्राद्धकर्म स्नान, दान, आहुति, यज्ञ आदि शुभ एवं धार्मिक क्रियाएं रात्रि में वर्जनीय होती हैं। ऐसी रात्रि में कुशल पुरुष भोजन नहीं करते हैं। [6]

2. रात्रिभोजन संयम का विनाश करने वाला होता है। क्योंकि रात्रि में जीते जीवों की भक्षण की संभावना रहती है और इससे खाने की गृद्धता का दोष लगता है। जो अहर्निश सदा खाया करते हैं वे सींग, पूंछ और खुर रहित पशु ही हैं।

3. **भाग्यहीन, आदररहित नीच, कुलहिं उपजाहिं।**

दुख अनेक लहै सही जो निशि भोजन खाहिं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो कदाचि मर मनुष है, विकल अंग बिनु रूप।
अलप आयु दुर्भग अकुल, विविध रोग दुख कूप॥
(किसनसिंह कृत क्रिया कोष)

4. रात्रि के समय यानि सूर्यास्त के बाद और सूर्योदय के पूर्व भोजन करने वाले मनुष्य को मरकर उस पाप के फल से उल्लू, कौआ, बिलाव, गीध, संवर, सुअर, सांप, बिच्छु, गोध आदि निकृष्ट पशु पक्षी योनि में जन्म लेना पड़ता है। महाभारत के शांतिपर्व में नरक में जाने के चार दरवाजे बताए गए हैं। उनमें पहला रात्रि के समय भोजन करना कहा गया है। परस्त्रीगमन, पुराना अचार, मुरब्बा आदि खाना और जमीकंद खाना ये अन्य चार बातों में हैं।

5. रात्रि में वातावरण का ताप, सूक्ष्म जीवों एवं अनेक त्रस जीवों की उत्पत्ति में अनुकूलता पैदा करता है। ये सभी जीव समुदाय जरा सा हवा का झोंका लगने से देखते ही देखते मर जाते हैं और उनका कलेवर भोजन में मिल जाता है, ऐसी स्थिति में रात्रिभोजन का त्याग न करने वाले को मांस का त्यागी कैसे कहा जा सकता है, अर्थात् नहीं कहा जा सकता है।

6. भोजन पकते समय पाक भोज्य की गंध वायु में फैलती है, उस वायु के कारण उन पात्रों में अनेक जीव आकर पड़ते हैं। अत: दयाधर्म पालन करने वाले पुरुषों को, रात्रिभोजन को विष मिले अन्न के समान मानकर सदा के लिए त्याग कर देना चाहिए।

रात्रिभोजन के पाप से मनुष्य नीच कुलों में दरिद्री के रूप में उत्पन्न होता है। उस पाप से अनेक दोषों से परिपूर्ण राग द्वेष से अंधी, शील रहित, कुरूपिणी और दुख देने वाली स्त्री मिलती है। बुरे व्यसनों में रंगे हुए पुत्र और क्लेश देने वाले भाई बंध मिलते हैं। वह भव-भव में दरिद्री, कुरूप, लंगड़ा, कुशीली, अपकीर्ति फैलाने वाला, बुरे व्यसनों का सेवन करने वाला, अल्पायु वाला, अंग भंग शरीर वाला, दुर्गतियों में जाने वाला, कुमार्गगामी और निंद होता है। अत: रात्रि में आहार का त्याग कर देने से वह अपनी इंद्रियों को वशीभूत करके संयमी बनता है।

7. जो पुरुष सूर्य के अस्त हो जाने पर भोजन करते हैं, उन पुरुषों को सूर्य द्रोही समझना चाहिए। जैसा कि धर्म संग्रह श्रावकाचार में कहा गया है।

यो मित्रेऽस्तंगते रक्ते विदध्याद्भोजनं जन।
तद् द्रोही स भवेत्पाप: शवस्योपरि चाशनम्॥

रात्रिभोजन निषेध : वैज्ञानिक दृष्टिकोण

सूर्य प्रकाश पाचन शक्ति का दाता है। जिनकी पाचन शक्ति कमजोर पड़ जाती है, उसके लिए डाक्टर की यही सलाह होती है कि वह दिन में हल्का भोजन करे। उसके लिए रात्रि में भोजन करने का निषेध किया जाता है। रात्रि के समय हृदय और नाभि कमल संकुचित हो जाने से भुक्त पदार्थ का पाचन गड़बड़ हो जाता है। भोजन करके सो जाने पर वह कमल और भी संकुचित हो जाता है और निद्रा में आ जाने से पाचन शक्ति घट जाती है।

आरोग्य शास्त्र में भोजन करने के बाद तीन घंटे तक सोना स्वास्थ्य की दृष्टि से विरुद्ध है। सूर्य के प्रकाश में नीले आकाश के रंग में सूक्ष्म कीटाणु स्वत: नष्ट हो जाते हैं। रात्रि में कृत्रिम प्रकाश जितना तेज होता है उसी अनुपात में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति उतनी ही अधिक होती है जो भोजन में गिर जाते हैं। गिर जाने से हिंसा का पाप तो लगता ही है साथ ही अनेक असाध्य रोग पेट में उत्पन्न हो जाते हैं।

सूर्य के प्रकाश में अल्ट्रावायलेट किरणें एवं अवरक्त लाल किरणें होती है, जिस प्रकार एक्स रे मांस और चर्म को पार कर पाती है। उसी प्रकार उक्त दोनों प्रकार की किरणें कीटाणुओं के भीतर प्रवेश कर उन्हें नष्ट करने की शक्ति रखती हैं। यही कारण है कि दिन में सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है। उक्त दोनों प्रकार की किरणें सूर्य के दृश्य प्रकाश के साथ रहती हैं।

जैसा कि हम जानते हैं कि ऑक्सीजन प्राण वायु होती है जो श्वांस लेने में लाभकारी और उपयोगी है तथा कार्बोनिक गैसें हानिकारक होती हैं। वृक्ष दिन में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में कार्बोनिक गैसों का अवशोषण करके ऑक्सीजन गैस का उत्सर्जन करते रहते हैं। इस प्रकार दिन में पर्यावरण शुद्ध और स्वास्थ्यकर रहता है जबकि रात्रि में वृक्ष कार्बोनिक गैसों को मनुष्य की भांति छोड़ते हैं और पर्यावरण अशुद्ध हो जाता है। अत: दिन के शुद्ध वायुमंडल में किया गया भोजन स्वास्थ्यकर और पोषण युक्त होता है। भारतीय प्राचीन ग्रंथों में एवं वेदों में सूर्य को भगवान की संज्ञा से उपहृत कर उसकी उपासना की जाती है। कई लोग जैन और जैनेतर रविव्रत, रविवार को करते हैं। कुछ सूर्य को जलार्पण करते हैं। यह सब इसलिए किया जाता है कि सूर्य रोगहारक शक्ति रखता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयुर्वेद शास्त्र के आलोक में : रात्रिभोजन निषेध

अंग्रेजी में एक प्रसिद्ध कहावत है- Deads of Darkness are commited in the dark.अर्थात् काले, अन्याय और अत्याचार के कार्य अंधकार में ही किए जाते हैं। हमारी आत्मा और शरीर दोनों का संबंध भोजन से है। शुद्ध और सात्विक भोजन शुद्ध विचार उत्पन्न करता है और शरीर को निरोग रखता है। भोजन के लिए चार प्रकार की शुद्धि कही गयी है- द्रव्य शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि और भाव शुद्धि।

जो भी खाया जाए या पिया जाए वह शुद्ध होना चाहिए। द्रव्य शुद्धि अहिंसा भाव से आती है। जो भोजन हिंसा कारणों से या हिंसा कार्य से उद्भूत होता होगा वह कभी भी शुद्ध नहीं हो सकता है। हिंसक साधनों जैसे चोरी आदि से कमाया गया धन और उससे बना भोजन कैसे शुद्ध होगा। उसी प्रकार अकाल या रात्रि में किया गया भोजन शुद्ध नहीं होता है। प्रकाश में किया शुद्ध भोजन सात्विक भावों का जनक होता है।

स्वामी शिवानंद जी एक परोपकारी संत हुए है जिन्होंने हेल्थ एंड डाइट पुस्तक में लिखा है "The evening meal should be light and eating very early. If possible take milk and fruits only before 7 pm. No solid or liquid should be taken after sunset." (Page 260)

रात्रि शब्द का पर्यायवाची तमिस्रा है। तमः पूर्ण होने से यह तमिस्रा कहलाती है। तमः समय में बना भोजन भी तामसी होता है। अस्तु सात्विक लोगों को तामस भोजन सर्वथा त्याज्य है। इसलिए रात्रि के समय बनाया गया भोजन दिन में खाना भी सर्वथा तामसिक होने से वर्जित है। सात्विक आहार केवल सूर्य के प्रकाश में ही बनाया हुआ और ग्रहण करने से सुख, सत्व और बल का प्रदाता होता है। आरोग्यदाता सूर्य के प्रकाश में धर्म, अर्थ और मोक्ष पुरुषार्थ किया जाता है, जबकि काम पुरुषार्थ के लिए रात्रि होती है।

दिवा भोजन का वैज्ञानिक पहलू

घड़ी दोय जब दिन चढ़ै, पिछलो घटिका दोय।
इतने मध्य भोजन करे, निश्चय श्रावक सोय॥
(किसनसिंहकृत क्रियाकोश-16)

जो सच्चा श्रावक होता है, वह दिन निकलने के दो घड़ी पश्चात तथा सूर्यास्त के दो घड़ी पहले ही भोजन ग्रहण कर लेता है। इसका भी वैज्ञानिक कारण है- प्रकाश की संपूर्ण आंतरिक परावर्तन की घटना (Total internal reflection of light) के कारण सूर्य अपने वास्तविक उदयकाल से दो घड़ी अर्थात् 48 मिनट पूर्व ही पूर्व दिशा में दिखने लगता है। वह वास्तविक सूर्य नहीं होता है बल्कि संपूर्ण आंतरिक परावर्तन की घटना के कारण उसका आभासी प्रतिबिंब दिखाई देता है। इसी प्रकार वास्तविक सूर्य डूब जाने के बाद भी दो घड़ी या 48 मिनट तक उसका आभासी प्रतिबिंब आकाश में दिखाई देता रहता है। सूर्य के इस आभासी प्रतिबिंब में दृश्य किरणों के साथ अवरक्त लाल किरणें एवं अल्ट्रा वायलेट किरणें नहीं होती हैं। वे केवल सूर्योदय के 48 मिनट बाद आती हैं और सूर्यास्त के 48 मिनट पूर्व ही समाप्त हो जाती हैं। उक्त कारण से दो घड़ी सूर्योदय के पश्चात भोजन करने का विधान सुनिश्चित किया गया है।

इसी प्रकार वैष्णव धर्म में सूर्य ग्रहण के काल में भोजन करने का निषेध किया गया है। इसका भी वैज्ञानिक पहलू है। सूर्यग्रहण के समय में उक्त दोनों प्रकार की अदृश्य किरणों की अनुपस्थिति दृश्य प्रकाश में रहती है। इन दोनों प्रकार की किरणों (इन्फ्रारेड एवं अल्ट्रावायलेट) के गर्म स्वभाव के कारण भोजन को पचाने की क्षमता होती है। कृत्रिम तेज प्रकाश जैसे सोडियम लैंप, मर्करी लैंप, आर्क लैंप से निकलने वाले प्रकाश का यदि वर्णक्रम देखें तो स्पष्ट होता है कि उनमें भी ये दोनों प्रकार की किरणें नहीं पाई जाती हैं।

जैन धर्म में जमीकंद को अखाद्य या अभक्ष्य क्यों बताया गया है उसका भी बड़ा वैज्ञानिक कारण है। जहाँ सूर्य की किरणें नहीं पहुँच पाती वहाँ असंख्यात सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। जमीन के अंदर अंधकार में होने वाले, आलू, मूली, अरबी आदि कंदमूलों में असंख्यात सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हो जाने से उनका त्याग बताया गया है। रात्रि अंधकार युक्त तामसी हुआ करती है। उस समय असंख्यात जीव स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने के कारण रात्रिभोजन का निषेध किया गया है।

एक बात और अनुभव में आती है कि रोगी का रोग रात्रि में ज्यादा तकलीफदेह हो जाता है। रोगी का दिन आसानी से व्यतीत हो जाता है, लेकिन रात्रि तामस होने के कारण वह रोग को बढ़ा देती है। दिन सात्विक होता है, जो रोग में फायदा पहुंचाता है। अतः रात्रि में भोजन करना हानिकारक है। हमारे शरीर में सात्विक, राजस एवं तामस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये तीन गुण पाए जाते हैं। इनमें सात्विक गुण प्राकृतिक होता है। जबकि राजस और तामस वैकृतिक या वैभाविक परिणति वाले माने गये हैं। दिन में भोजन करने से प्राकृतिक सात्विक गुण की वृद्धि होती है। जिससे पुरुष में ज्ञान, बुद्धि, मेधा, स्मृति, धृति आदि गुणों का विकास होता है तथा रात्रि में भोजन करने से तामस गुणों की वृद्धि होती है जिससे व्यक्ति के अंदर विषाद, अधर्म, अज्ञान, आलस्य और राक्षसी वृत्ति का जन्म होता है। रात्रि में खाया हुआ भोजन तामसी परिणामों का दाता होता है।

वैदिक और वैष्णव धर्म में रात्रिभोजन निषेध

1. जो मद्य पीते हैं, मांस भक्षण करते हैं, रात्रि के समय भोजन करते हैं तथा कंद भोजन करते हैं, उनके तीर्थयात्रा करना, जप-तप करना, एकादशी करना, जागरण करना, पुष्कर स्नान या चंद्रायण व्रत रखना आदि सब व्यर्थ है। वर्षाकाल के चार मास में तो रात्रिभोजन करना ही नहीं चाहिए। अन्यथा सैकड़ों चंद्रायण व्रत करने पर भी शुद्धि नहीं होती है। (ऋषीश्वर भारत वैदिक दर्शन)

2. वैदिक ग्रंथ यजुर्वेद आह्निक में लिखा है-

पूर्वाह्ने भुञ्यते देवैर्मध्यान्हे ऋषिभिस्तथा।
अपराह्ने च पितृभिः सायाह्ने दैत्य दानवैः ॥ 24॥

स्वर्गवासी देवों का भोजन प्रातःकाल, ऋषिगण मध्यान्ह में और पितृगण दिन के तीसरे पहर अपरान्ह में भोजन करते हैं, जबकि राक्षस और दैत्य जन रात के समय भोजन किया करते हैं।

संध्यायां यक्षरक्षोभिः सदा भुक्तकुलोद्वह।
सर्वबेलामतिक्रम्य रात्रौ भुक्तभोजनम्॥ 19॥

3. मार्कण्डेय पुराण में स्पष्ट रूप से सूर्य के अस्त हो जाने पर पानी पीना रूधिर पीने के समान और अन्न खाना मांस खाने के समान बताया गया है।

अस्तं गते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते।
अन्नं मासं समं प्रोक्तं मार्कण्डेय महर्षिणा॥

(अध्याय 33, श्लोक 53)

4. स्कंधपुराण के अध्याय सात में दिन में भोजन करने वाले पुरुष को विशेष पुण्य का भोग्य बताया गया है-

एक भक्ताशनान्नित्यमग्निहोत्रफलं भवेत्।
अनस्तभोजिनो नित्यं तीर्थयात्राफलं भजेत्॥

अर्थात् जो दिन में एक बार भोजन करता है, उसे अग्निहोम के फल के समान फल प्राप्त होता है और सदैव सूर्यास्त के बाद भोजन न करने वाला घर बैठे ही समस्त तीर्थयात्राओं का फल प्राप्त करता है।

5. योग वशिष्ठ के पूर्वार्द्ध श्लोक में लिखा है कि जो रात्रि के समय भोजन नहीं करता विशेष रूप से चौमासे में नहीं करता उसकी सभी इच्छाएं इसलोक और परलोक में पूर्ण हो जाती हैं।

नक्तं न भोज्येद्यस्तु चातुर्मास्ये विशेषतः।
सर्वकामानवाप्नोति हीहलोके परत्र च॥ 108॥

6. रात्रिभोजन निषेध के साथ-साथ मनुस्मृति में जल छानकर पीना बताकर इन चार बातों को करणीय माना है-

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिवेत्।
सत्य पूतं वदेद्वाक्यं, मनः पूतं समाचरेत् ॥

(मनुस्मृति)

इसी प्रकार अरण्यपुराण वैदिक शास्त्र में रात्रि भोजन को मांस भक्षण के तुल्य माना है।

उपसंहार

बुंदेलखंड में ''अन्थउ'' शब्द का प्रयोग सूर्यास्त के पूर्व भोजन करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यह अणथम् शब्द का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ है अनस्तमित या रात्रि भोजन का त्याग। अमितगति श्रावकाचार में लिखा है दिन के आदि और अंत दो-दो घड़ी समय को छोड़कर जो भोजन निर्मल सूर्य के प्रकाश में निराकुल होकर करते हैं वे मोहांधकार को नाश कर आर्हन्त्य पद पाते हैं। रात्रि में भोजन त्याग से आधा जन्म उपवास में व्यतीत होता है। जो रात्रि भोजन निवृत्ति रूप नियम न लेकर, दिन में ही भोजन करते हैं उन्हें यद्यपि कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता पर वे भावी जन्म दिवा भोजी कुल में पा सकते है। जो अज्ञानी पुरुष रात्रिभोजन जीवों के लिए सुखदायी कहते हैं, मानो वे अग्निशिखाओं के मध्य जलते हुए वन में फलों की आशा रखते हैं। जो लोग पुण्यकारी दिन के भोजन और पापपूर्ण रात्रिभोजन को समान कहते हैं वे प्रकाश और अंधकार को समान कोटि में परिगणित करते हैं। जो पुण्य की आकांक्षा से दिन में उपवास रखकर रात्रि में भोजन करते हैं वे फल देने वाली लता को मानो भस्म कर रहे हैं।

अहिंसाव्रत रक्षार्थं मूलव्रतविशुद्धये।
निशायां वर्जयेद्भुक्तिमिहामुत्र च दुःखदाम्॥

उपासकाध्ययन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए इस लोक और परलोक में दुख देने वाले रात्रिभोजन का त्याग कर देना चाहिए। मौन पूर्वक भोजन करने से तप एवं संयम की वृद्धि होती है और भोजन के प्रति लोलुपता कम होती है। अतः व्रती श्रावक को नियम से मौनपूर्वक भोजन करना चाहिए। इससे उसके स्वाभिमान की रक्षा होती है और उसे याचनाजनित दोष नहीं लगता। मौन पूर्वक भोजन करने से भोजन के प्रति आसक्ति भाव उत्पन्न नहीं होता है। अतः शब्दात्मक द्रव्यश्रुत की विनय रूप पालन होता है। इससे मन और वचन की सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार न केवल अध्यात्म एवं धार्मिक दृष्टि से अपितु स्वास्थ्य और आयुर्वेद शास्त्र के पश्चात सांयकाल के भोजन के एक प्रहर पश्चात शयन करना चाहिए अन्यथा अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न होते हैं। विवेकी पुरुषों को रात्रिभोजन का अवश्य परित्याग कर देना चाहिए।

संदर्भ

1. भव्योपदेश उपासकाध्ययन श्रावकाचार भाग तीन पृष्ठ 376
2. लाटी संहिता पृष्ठ 5– वही
3. वही श्लोक 47 एवं 48 पृष्ठ 6– वही
4. रात्रौ भुंजानानां यस्मादनिवारिता भवति हिंसा।
हिंसा विरतैस्तस्मात्यक्तव्यारात्रिभुक्तिरपि।
रागाद्युदय परत्वाद निवृत्तिर्नातिवर्तते हिंसा।
रात्रि दिवमाहरतः कथं हि हिंसा न सम्भवति॥
पुरूषार्थसिद्धयुपाय
(श्लोक 129 एवं 130 श्रावकाचार भाग एक)
5. स्वामिकार्तिकेयानुपेक्षागत श्रावकाचार–श्लोक 81
6. न श्राद्धं दैवतं कर्म स्नानं दानं न चाहुतिः।
जायते यत्र कि तत्र नराणां भोक्तुमर्हति॥ 25॥
(धर्मसंग्रह श्रावकाचार पृष्ठ 123)
7. भुंजते निशि दुराशा यके गृद्धि दोष वश वर्तिनोजनाः ॥ 43॥
(अमितगति श्रावकाचार)
8. वल्लभते दिननिशिथयोः सदा यो निरस्त यम संयम क्रियाः।
श्रंग, पृच्छ शफ संग वर्जितो मण्यते पशुवयं मनीषिभिः॥ 44॥
॥ वही श्रावकाचार॥

जवाहर वार्ड, बीना (म.प्र.)

जरूर सुनें

सन्त शिरोमणि आचार्यरत्न श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के आध्यात्मिक एवं सारगर्भित प्रवचनों का प्रसारण **'साधना चैनल'** पर प्रतिदिन रात्रि 9.30 से 10.00 बजे तक किया जा रहा है, अवश्य सुनें।

श्रुतज्ञान प्रश्नावली प्रतियोगिता

परमपूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज के आशीर्वाद से श्रीमती सुशीला पाटनी (आर.के. मार्बल) मदनगंज- किशनगढ़, सुलोचनादेवी जयपुर, उषा देवी रारा आसाम, शोभादेवी रारा आसाम के कुशल निर्देशन में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन द्वारा आचार्य जी के दीक्षा दिवस के अवसर पर श्रुतज्ञान प्रश्नावली प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

भौतिकता के इस युग में महिलाओं में अन्तर्निहित धार्मिक शक्ति को विकासशील और समुन्नत बनाकर जैनधर्म की प्रभावना करना इस प्रतियोगिता का मुख्य लक्ष्य है।

इस प्रतियोगिता में भक्तामर स्तोत्र, सामान्य ज्ञान, रक्षा बंधन, सावन-भाद्रपद मास के व्रतों, दशलक्षण धर्म के व्रतों से संबंधित प्रश्नों के साथ-साथ वासपूज्य भगवान एवं आचार्य श्री शान्तिसागर जी के जीवन संबंधी प्रश्नों को समायोजित किया गया था। प्रतियोगिता में भाग लेने वाली महिलाओं ने संबंधित शास्त्रों एवं जीवन चरित्रों का अध्ययन कर अपने-अपने उत्तर प्रस्तुत किए। इस प्रतियोगिता में 375 प्रश्न पूछे गये एवं पूरे भारतवर्ष से लगभग 350 महिला प्रतियोगियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया।

निम्न महिलाओं ने परीक्षा परिणाम स्वरूप प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त किया।

प्रथम स्थान : **श्रीमती बीना पाटनी, जयपुर।**

द्वितीय स्थान : **श्रीमती शशिप्रभा बज, मदनगंज-किशनगढ़**

तृतीय स्थानः **1- कुमारी गरिमा बाकलीवाल, मदनगंज किशनगढ़**

2- श्रीमती रश्मि पहाड़िया जयपुर।

उपर्युक्त प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय के अतिरिक्त श्रीमती सुशीला पाटनी द्वारा अजमेर, किशनगढ़, नसीराबाद के प्रतियोगी विजेता महिला एवं पुरुषों को ज्ञानोदय तीर्थक्षेत्र नारेली अजमेर पर उन्हीं के द्वारा आयोजित 1 जनवरी 2005 को 'पंच कल्याणक मण्डल विधान' के आयोजन के पश्चात सभी प्रतियोगियों को पुरुस्कार से सम्मानित किया गया । भविष्य में यह प्रतियोगिता इसी तरह होती रहे ऐसी कामना करते हैं।

निर्मला पाण्ड्या, महामंत्री
श्री ज्ञानोदय तीर्थक्षेत्र महिला समिति, नारेली, अजमेर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा और वर्तमान जीवनशैली

डॉ.सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'

समय कहता है-

मैं वह आईना हूँ जो देखूँगा वह दिखाऊँगा,
फरेब देने का मुझे हुनर नहीं आता॥

सामाजिक परिदृश्य में समय ने जिसे देखा वह हिंसा और अहिंसा का चित्रण था। जहाँ अहिंसा चुक जाती है वहाँ हिंसा अपना प्रभाव दिखलाती है और जहाँ हिंसा अपने चरम पर पहुँच जाती है वहीं से अहिंसा की चाह प्रारम्भ होती है। ''सबसे ऊँचा आदर्श जिसकी कल्पना मानव मस्तिष्क कर सकता है, अहिंसा है। अहिंसा के सिद्धांत का जितना व्यवहार किया जायेगा, उतनी ही मात्रा सुख और शान्ति की विश्वमण्डल में होगी।'' [1] नीति कहती है-

"whoever places in mans path a share, Himself will in the sequel stamble there. Joy's fruit up on the branch of kindness grows. Who sows the bramble, will not pluck the rose."

अर्थात् जो दूसरों के मार्ग में जाल बिछाता है, वह स्वयं उसमें गिरेगा। करुणा की शाखा में आनंद के फल लगते हैं। जो काँटा बोता है वह गुलाब को नहीं पायेगा। यहाँ तक कह दिया गया कि-

जो तोको काँटा बुबै, ताहि बोय तू फूल।
तोहि फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरसूल॥ कबीर

कुछ लेकर बदले में देना व्यापार है और देने की शक्ति होने पर बिना याचना के देना दान है, धर्म है। सद्गृहस्थ इसी धर्म का अवलंबन लेता है। 'नजमी सिकन्दराबादी' ठीक ही कहते हैं कि-

मैंने क्या पाया है दुनियां से कभी सोचा नहीं।
सोचता ये हूँ कि मैं दुनिया को क्या दे जाऊँगा॥

जिसकी भावना दान की है, परोपकार की है, समता की है, समाज की है, वे हिंसा से दूर रहकर अहिंसा की भावना रखते हैं और उसी का परिपालन करते हैं। महाभारत के अनुशासन पर्व में अहिंसा की महिमा इस रूप में गायी है कि-

अहिंसा परमोधर्मस्तथाहिंसा परं तपः।
अहिंसा परम सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते॥
अहिंसा परमोधर्मस्तथा हिंसा परो दमः।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः॥
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परम् फलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्॥
सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वाऽप्लुतम्।
सर्वदान फलं वापि नैतन्तुल्यमहिंसया॥'' [2]

अर्थात् अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम तप है। अहिंसा परम सत्य है जिससे धर्म प्रवर्तित होता है। अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम दम (इन्द्रियजय) है। अहिंसा परम दान है, अहिंसा परम तप है। अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है। अहिंसा परम मित्र है, अहिंसा परम सुख है। सभी यज्ञों, सभी दानों, सभी तीर्थों, सभी दान-फलों में भी अहिंसा के समान और कोई नहीं है। आचार्य समन्तभद्र ने अहिंसा को संपूर्ण संसार के प्राणियों के लिए परम ब्रह्म बताया है- ''अहिंसा भूतानां जगतिविदितं ब्रह्म परमम्।'' [3]

आचार्य सोमदेव कहते हैं-

यस्यात्प्रमादयोगेन प्राणिषुप्राणहायनम्।
सा हिंसा रक्षणं तेषामहिंसा तु सतां मता॥ [4]

अर्थात् असावधानी अथवा राग-द्वेष आदि के अधीन होकर जो जीवधारियों का प्राण हरण किया जाता है, वह हिंसा है। उन जीवों का रक्षण करना अहिंसा है। संसार में अहिंसा की महत्ता को सभी धर्म स्वीकार करते हैं।

भगवान महावीर की देशना है कि-

एयं खु नाणिणो सारं जं न हिंसइ कंचण।
अहिंसासमयं चेव एतावंते वियाणिया॥
सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणवहं घोरं णिग्गंथा वज्जयंति णं॥[5]

अर्थात् मनुष्य के ज्ञानी होने का सार यह है कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। अहिंसामूलक समता ही धर्म है, अहिंसा का विज्ञान भी यही है। सभी प्राणी जीवित रहना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। प्राणवध को घोर (पाप) समझकर निर्ग्रन्थ उसका वर्जन करते हैं।

कुछ लोगों का मत है कि हिंसा अपरिहार्य है। उसके बिना समाज और संसार का काम नहीं चल सकता। यहाँ तक कि वे यह भी कहते हैं कि यदि समाज में हिंसा नहीं होती तो अहिंसा के महत्व का प्रतिपादन ही नहीं हो पाता। हिंसा और अहिंसा दोनों साथ-साथ चलते हैं, ऐसा मानने वाले 'कीनेथ गोर्डन' का हिंसा के बारे में कथन है कि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस लम्हे से मेरे जेहन में फूलों का ख्याल आया,
ठीक उसी वक्त मेरे हाथों में पत्थर बरामद हुआ॥

किन्तु यह कथन उचित नहीं है। संसार में जिस क्षण कोई जीव गर्भ में आता है तो माता की अहिंसक भावना उसका पोषण करती है। जब वह पृथ्वी पर अवतरित होता है (जन्मता है) तो माँ अपने दुग्ध से उसका पालन करती है। दुग्ध का वर्ण सफेद होना ही वात्सल्य एवं अहिंसा का द्योतक है, जबकि रक्त वात्सल्य का प्रतीक नहीं माना जाता। यहाँ तक कि हिंसक प्रकृति जीवी जीव भी, अपने बच्चों को दुग्धपान ही कराते हैं, रक्तपान नहीं। स्वयं के रक्त को दुग्ध के रूप में ढालकर पिलाना हिंसा के विरुद्ध अहिंसा की जीत है। कहते हैं कि जब भगवान महावीर को चण्डकौशिक सर्प ने काटा तो उनके शरीर से दुग्ध की धारा बह निकली। यह दुग्ध की धारा संसार के क्रूर प्राणियों के प्रति वात्सल्य की प्रतीक थी। यह मान्यता है कि भगवान/तीर्थंकर का रक्त श्वेतवर्णी दुग्ध के समान होता है। भला, ऐसा क्यों न हो जिसके मन और आत्मा में कूट-कूटकर अहिंसा भरी हुई हो उसके शरीर में दुग्ध की धारा ही तो बहेगी, वह रक्त की उत्तेजना को कैसे अपने में समाहित कर सकता है? वह क्रोध और हिंसा पर विजय इसीलिए पा सके क्योंकि उनके अंतस में वात्सल्य और प्रेम की धारा निरन्तर प्रवाहमान थी। वे 'सर्वसत्त्वानां हिताय, सर्वसत्त्वानांसुखाय' अहिंसा को चरितार्थ कर सके।

जो लोग अहिंसा का निषेधपरक अर्थ करते हैं वे यह भूल जाते हैं कि विधेयात्मक पक्ष का आधार बनाये बिना निषेधात्मकता का कोई अर्थ नहीं है। जब हम और हमारे आराध्य हिंसा का निषेध करते हैं तब उनके विचारों में कहीं न कहीं प्राणी मात्र के अस्तित्त्व की रक्षा और सम्पोषण की भावना होती है। गांधीजी कहा करते थे कि- ''सर्वजीवों के प्रति सद्भावना या समस्त जीवों के प्रति दुर्भावना का पूर्ण अभाव ही अहिंसा है।'' भगवान महावीर ने तो यहाँ तक कहा कि-

जीव वहो अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ।
ता सव्व जीवहिंसा परिचत्ता अन्तकामेहिं
जह ते न पियं दुक्खं आणिय एमेव सव्वजीवाणं।
सव्वायरमुवउत्तो अत्तोवम्मेण कुणसु दयं॥[6]

अर्थात् जीव का वध करना अपना ही वध करना है, जीवों पर दया करना अपने पर दया करना है अतः सभी जीवों की हिंसा को अपने ही प्रिय की हिंसा समझना चाहिए। जैसे तुम्हें दुःख प्रिय नहीं है वैसे ही अन्य सभी जीवों को दुःख प्रिय नहीं हैं। अतः सब प्राणियों पर आत्मौपम्य दृष्टि रखकर दयाभाव रखना चाहिए।

धर्मदयामूलक है तथा जीवधारियों पर अनुकम्पाभाव रखना दया है-

''**दयामूलोभवेद्धर्मो दयाप्राणानुकम्पनम्।**''[7] हमारा धर्म हमें रक्षा करना सिखाता है रक्षणीय की हत्या करना नहीं। यदि मानवता की उन्नति करनी है, स्वयं के अस्तित्त्व को बचाना है तो अहिंसा का पालन करना ही चाहिए। अहिंसा समत्व का बोध कराती है, क्रूरता, विषमता, अन्याय, अत्याचार और अनाचार से बचाती है। जहाँ अहिंसा है वहाँ करुणा है, प्रेम है, आनन्द है, सुख है और जहाँ हिंसा है वहाँ कलुषता है, क्रन्दन है, चीत्कार है। हिंसक व्यक्ति कभी सुखी नहीं रह सकता क्योंकि वह अपनी आत्मा का हत्यारा स्वयं है। अहिंसा का संबंध हमारे अन्तश्चित्त से है और बाहरी चराचर जगत से भी है। राग-द्वेष रूप परिणामों से निवृत्त होकर साम्य भाव में स्थिर होना अहिंसा है जिसके लिए हमारे तीर्थंकरों ने धर्म कहा है-

अतीतैर्भाविभिश्चापि वर्तमानैः समैर्जितः।
सर्वे जीवा न हन्तव्या, एष धर्मो निरूपितः॥

अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान, सभी तीर्थंकरों ने सभी जीवों को नहीं मारना चाहिए अर्थात् अहिंसा को ही धर्म निरूपित किया है।

अहिंसा वीरोचित भाव है जिसकी अनदेखी नहीं करना चाहिए। महात्मा गांधी की दृष्टि में- ''अहिंसा डरपोक और कायरों का मार्ग नहीं है, यह उन बहादुरों का मार्ग है जो मृत्यु के वरण के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। जिसके हाथ में शस्त्र है वह बहादुर हो सकता है, लेकिन उससे भी बहादुर वह है जो बिना हिचकिचाहट, बिना शस्त्र उठाए मृत्यु का सामना करता है।'' वीरता तो वहाँ है जहाँ नीति हो, मूल्य हो। शायर ठीक ही कहता है-

तमाम उम्र लड़ाई लड़ो उसूलों की,
जो जी सको तो जिन्दगी रसूलों की॥

संसार में प्रायः सभी लोग अपने लिए दुःखी मानते हैं किन्तु वे दुःख के मूल को भूल जाते हैं। आचार्य शुभचन्द्रदेव कहते हैं कि-

यत्किञ्चित्संसारे शरीरिणां दुःखशोक भयबीजम्
दोर्भाग्यादि समस्तं तद्धिंसासम्भवं ज्ञेयम्॥[8]

अर्थात् इस संसार में जीवों के दुःख, शोक, भय के बीजस्वरूप दुर्भाग्य आदि का दर्शन होता है, वह सब हिंसा से उत्पन्न समझना चाहिए। वे सावधान करते हैं कि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभयं यच्छ भूतेषु कुरू मैत्रीमनिन्दिताम्।
पश्यात्म सदृशं विश्वं जीवलोकं चराचरम्॥ [9]

अर्थात् हे जीव! तू किसी के भय का कारण न बनकर प्राणियों को अभयदान दे। स्वयं भी अहिंसा के बल पर निर्भय बन। सब जीवों से प्रशंसनीय मैत्री भाव रख। समस्त जगत के प्राणियों को आत्मवत् देख।

उक्त भावनाओं के अनुरूप कार्य करने वाला ही अहिंसा के महत्व को जान सकता है। आचार्य अमितगति ने सामायिक पाठ में स्पष्ट किया है कि-

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव॥[10]

अर्थात् प्राणीमात्र के प्रति मैत्री भाव, गुणीजनों के प्रति प्रमोदभाव, दु:खी और क्लेष युक्त जीवों के प्रति करूणा (कृपा) भाव तथा प्रतिकूल विचारवालों के प्रति माध्यस्थ भाव रखें। हे देव! मेरी आत्मा सदा ऐसे भाव धारण करे।

मैत्री, प्रेम, करूणा, संवदेनशीलता, मधुर संभाषण, मानवीयता, निर्वैर, सहिष्णुता, सह अस्तित्व की भावना, आशावादिता, निष्कपटता जैसे भावों से अहिंसा पुष्ट और प्राप्त शक्ति के दुरूपयोग से इसका पोषण होता है। अत: हमें हिंसा से बचने के लिए अपने आपसे उन विचारों को समाप्त करना होगा जो हमें हिंसक बनाते हैं।

आओ सब मिलके जड़ों को ही मिटा देते हैं,
उन दरख्तों को जो जहरीली हवा देते हैं॥

अहिंसा के कवच से हम अपनी आत्मा, अपनी मानवीयता और अपनी मानवता को बचा सकते हैं। हिंसा कैसी भी हो वह अनुचित है। भगवान महावीर का अहिंसा के क्षेत्र में यह सबसे बड़ा अवदान है कि उन्होंने कहा कि-हिंसा चाहे किसी भी अच्छे-बुरे प्रयोजन से की जाय, हिंसा हिंसा है और त्यागने योग्य है। उन्होंने धर्म क्षेत्र में की जाने वाली हिंसा को भी पापकार्य माना और इसे त्यागने का उपदेश दिया। नरबलि, पशुबलि आदि यज्ञ की क्रियाओं को उन्होंने धर्म का आवरण डालकर अहिंसा बताने की चेष्टाओं को अधर्म बताया। जो लोग ''वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'' के समर्थक थे उन्हें भगवान महावीर के चिन्तन से धर्म का सही मार्ग मिला। अहिंसा के प्रति हमारी सम्बद्धता और प्रतिबद्धता का पता इसी से चलता है कि हम किसी भी परिस्थिति में हिंसा को स्वीकार करते हैं या नहीं? जैन धर्म ने अहिंसा को व्यापकता दी और कहा कि मन,वचन, काय एवं कृत, कारित और अनुमोदना से सभी प्रकार की हिंसा का त्याग करना अहिंसा है। यहाँ तक कि गृहस्थ के लिए जो चार प्रकार की हिंसा बतायी गयी- 1. आरम्भी, 2. उद्योगी, 3. संकल्पी, 4. विरोधी, वहाँ गृहस्थ को संकल्पी हिंसा के पूर्ण त्याग की बात की, वहीं आरम्भी, उद्योगी और विरोधी हिंसा के साथ विविध शर्तें जोड़ी और कहा कि इनमें आवश्यकता के अनुसार कार्य किया जाय। उद्योगी हिंसा में भी प्रत्यक्ष हिंसा वाले व्यापार नहीं करने के लिए कहा। यहाँ प्रत्यक्ष हिंसा से तात्पर्य ज्ञात हिंसा से है। सोमदेवाचार्य ने कहा कि 'अपने कर्त्तव्य के पालन करने में जो व्यक्ति हिंसा करता है वह क्षम्तव्य है।' तथा 'क्षत्रिय वीर उन्हीं पर शस्त्र उठाते हैं जो रणक्षेत्र में युद्ध करने को उनके सम्मुख हों अथवा जो उनके शत्रु हों, कंटक हों, उसकी उन्नति में बाधक हों। वे दीन, हीन एवं साधु आशय वाले व्यक्तियों पर हाथ नहीं उठाते।' विरोधी हिंसा तभी करने की छूट है, जब आत्महानि की संभावना हो।

मनुष्य समाज पर यह बहुत बड़ा दायित्व है कि वह मात्र मानव की ही चिन्ता न करे, अपितु संसार के निरीह जीवों की रक्षा के प्रति भी सतर्क रहे। नीतिवाक्यामृतम् के अनुसार-''वृद्धबालव्याधितक्षीणान् पशून् बान्धवानिव पोषयेत्'' अर्थात वृद्ध, बाल एवं व्याधिग्रस्त पशुओं का बान्धवों की तरह पोषण करे। किन्तु आज हो उल्टा रहा है हम रक्षक से भक्षक बन गये हैं। कत्लखानों की संख्या हमारे देश में निरन्तर बढ़ती जा रही है, पशुधन निरन्तर घटता जा रहा है। यहाँ तक कि दूसरों के भरण-पोषण के लिए हमारी देशीय सरकारें माँस का निर्यात करती हैं। उनकी दृष्टि में यह व्यापार है, जबकि हमारी दृष्टि में यह अनाचार और कर्त्तव्य-विमुखता है। यह कैसा व्यापार है जिसने हिंसा में प्रगति, व्यापार और लाभ देखना प्रारंभ किया है। डॉ.इकबाल ने यह प्रश्न कितना सार्थक किया है कि-

जान ही लेने की हिकमत में तरक्की देखी।
मौत का रोकने वाला कोई पैदा न हुआ?

जो लोग पशुओं की हिंसा एवं माँस निर्यात को उचित मानते हैं वे अपने ही विनाश को आमंत्रित करते हैं। कहा भी है-

भारत का उत्थान न होगा माँस निर्यात की कमाई से।
विनाश होगा इस देश का पशुओं की अवैध कटाई से॥

बिना धैर्य के अहिंसा संभव नहीं है। भगवान महावीर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की दृष्टि में-

अहिंसा लक्षणोधर्मस्तितिक्षालक्षणस्तथा।
यस्य कष्टे धृतिर्नास्ति, नाहिंसा तत्र सम्भवत्॥

अर्थात् अहिंसा धर्म का प्रथम लक्षण है तथा तितिक्षा (सहिष्णुता) द्वितीय लक्षण है। जिसके कष्ट में धैर्य नहीं है वहाँ अहिंसा सम्भव नहीं है।

धर्म तो अहिंसा समन्वित है। यदि संसार के सभी धर्मों का लघुत्तम निकाला जाये तो वह अहिंसा ही होगा। अन्तरंग में साम्यभाव और व्यवहार में प्रमाद रहित स्थिति अहिंसा के लिए आवश्यक है। जैनाचार्यों ने मात्र किसी को मारना ही हिंसा नहीं कहा अपितु राग-द्वेष सहित प्रवृत्ति को भी हिंसा कहा। आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं कि-

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिः हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः॥[11]

अर्थात् राग-द्वेषादि का उत्पन्न नहीं होना अहिंसा है और उन्हीं राग-द्वेषादि की उत्पत्ति हिंसा है, यह जिनागम का सार है।

वर्तमान दौर युद्ध, आतंकवाद और हिंसा का है। चारों ओर भय के बादल मंडरा रहे हैं। इन सबके मूल में हिंसक संसाधनों का संग्रह है। यदि विभिन्न राष्ट्रों के पास अस्त्र-शस्त्र, परमाणु बम, हाइड्रोजन बम आदि नहीं होते तो विश्व समाज को इतना भयाक्रान्त नहीं होना पड़ता। आचार्यों ने शस्त्र संग्रह को भी हिंसा माना। पुरुषार्थ-सिद्धयुपाय में आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं कि-

सूक्ष्मापि न खलु हिंसा पर वस्तुनिबन्धना भवति पुंसः।
हिंसायतन निवृत्तिः परिणाम विशुद्धये तदपि कार्या॥[12]

अर्थात् परपदार्थ के निमित्त से मनुष्य को हिंसा का रंचमात्र भी दोष नहीं लगता, फिर भी हिंसा के आयतनों-स्थानों (साधनों) की निवृत्ति परिणामों की निर्मलता के लिए करनी चाहिए।

यहाँ हमारे तथाकथित सभ्य समाज की भूल रही जो उसने पूर्ववर्ती आचार्यों की वाणी को आदर नहीं दिया और जब उसके दुष्परिणाम भोगने का समय आया तो अब निरूपाय हो सिर धुन रहे हैं। आज अहिंसा और अहिंसकों की भूमिका अति प्रासंगिक हो गयी है। 'माइकल स्कॉट' ने लिखा है कि- ''एक नए क्रान्तिकारी आंदोलन की तत्काल अपेक्षा है जिसमें न केवल परमाणु अस्त्र-शस्त्रों के उत्पादकों के प्रति अहिंसक प्रतिरोध की विधियों के प्रयोग करने का साहस हो, बल्कि मानव अधिकार और प्राकृतिक न्याय के हनन और दमनकारी कानून के विरूद्ध भी सक्रिय कदम उठा सकें और जो दमन, अन्याय और गरीबी के विरूद्ध एक ठोस, प्रभावपूर्ण लड़ाई लड़ सकें।''[13] राजनीति के निर्णयों के विरूद्ध हम यदि प्रेम-विश्वप्रेम का पैगाम समझा सकें तो हमारी महत्त्वपूर्ण भूमिका होगी। जिगर मुरादाबादी का यह शेर बड़ा मौजूं है कि-

उनका जो फर्ज है वह अहले सियासत जाने।
मेरा पैगाम मोहब्बत है जहाँ तक पहुँचे॥

जहाँ पहले हमारे घरों में अहिंसा का वास था वहाँ आज हमारे घर परिवार हिंसा के घर बन गये हैं। मच्छर मारने, चींटी मारने, कीड़े मारने की दवा से लेकर आदमी मारने तक की दवा मौजूद है। पानी छानने से जिस घर के क्रियाकलापों का प्रारंभ होता था वहीं आज खानपान में अभक्ष्य पदार्थ रूचि से खाये और खिलाये जाते हैं। रसोई घरों में चप्पल संस्कृति के प्रवेश तथा रेडीमेड व्यंजनों (खाद्य पदार्थों) एवं अमर्यादित अचारों के भरपूर दैनन्दिन व्यवहारों से हम कितने अहिंसक रह गये हैं, यह विचार एवं अन्वेषण का विषय है। हमारी भावनाओं के संकुचन ने हमारी अहिंसा की हिंसा की है।

आज पारिवारिक हिंसा चरम पर है। गर्भ में आने वाले शिशुओं खासकर कन्या भ्रूणों की रक्षा मुश्किल हो गयी है। उन्हें गर्भ में ही मार दिया जाता है। शहरों कस्बों में खुले सोनोग्राफी क्लिीनिक हमारी अहिंसक भावनाओं की हिंसा के लिए सर्वोत्तम साधन बन गये हैं जिनमें होने वाले गर्भस्थ शिशुओं के करूण क्रन्दन सुनने वाला कोई नहीं है। भक्त बेरहम हो गये हैं और भगवान तो वीतरागी हैं ही।

एक समाचार आया था कि एक व्यक्ति अपनी पत्नी को प्रताड़ित करने के लिए उसका खून निकालकर शराब में मिलाकर पीता था। दहेज प्रताड़ना के कारण अनेक युवतियां असमय काल-कवलित हो जाती हैं, आग की भेंट चढ़ जाती हैं। वृद्धों के संरक्षण की बेटा-बेटियों को कोई चिन्ता नहीं हैं उन्हें ओल्ड होम्स में ले जाने के लिए होड़ लगी है। हमारे दिल छोटे हो गये हैं, दिमाग बड़े हो गये हैं और भावनायें लाभ-हानि के तराजू पर घटने-बढ़ने लगी हैं। ऐसे में अहिंसा के नारे कौन लगाये मानसिक, वाचनिक और शारीरिक हिंसा के लिए अवसर ही अवसर हैं। वृद्धाश्रमों में जाकर यदि वृद्धों की आप-बीती सुनें तो हम अपनी प्रगतिशीलता और अमानवीयता को धिक्कारे हुए नहीं रह सकेंगे। महिला वर्ग की स्थिति तो और भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बदतर है। आज परिवार की घुटन को अहिंसक हवा का झोंका ही शान्ति दे सकता है। हैदर शेराजी ने यही आह्वान किया है-

बंद कमरे की घुटन जान भी ले सकती है।
खिड़कियां खोलके बाहर की हवा ली जाये॥

भगवान महावीर का अहिंसा संदेश सदा पथप्रदर्शक रहा है और रहेगा वे कहते हैं कि-

जं इच्छसि अप्पणतो जं च ण इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्सवि य एत्तियगं जिणसासणं॥

अर्थात् जैसा तुम अपने प्रति चाहते हो और जैसा तुम अपने प्रति नहीं चाहते हो, दूसरों के प्रति भी तुम वैसा ही व्यवहार करो, जिनशासन का सार इतना ही है।

हम सब जीना चाहते हैं। भौतिकता के मध्य जिस तरह नाम, चाम और दाम का खोखलापन प्रकट होने लगा है उससे अध्यात्म की चाह बढ़ने लगी है। प्रवचन सभाओं, कथा-कीर्तनों में बढ़ती भूख इसका प्रमाण है। अतः यह स्पष्ट है कि हम अहिंसक भावना रखकर ही अपनी जिंदगी सँवार सकते हैं। अगर भावना अच्छी हो, अहिंसामय हो तो हम कह सकते हैं कि- जिंदगी है चार दिन की, बहुत होते हैं चार दिन भी। आओ, हम एक स्वर हो कहें कि-

लिखना सीखो, पढ़ना सीखो, सदाचार से जीना सीखो।
आत्मोन्नति के पावन पथ पर, हरदम आगे बढ़ना सीखो॥
भारत का सन्देश तुम्हें है, हिंसा करना मत सीखो।
जन्म लिया जिस देश में तुमने, उस देश की रक्षा करना सीखो॥

सन्दर्भ

1. डॉक्टर वेणीप्रसाद : हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृ.613
2. महर्षि व्यास : महाभारत अनुशासन पर्व
3. आचार्य समन्तभद्र : वृहत्स्वयम्भू स्तोत्र, 119
4. आचार्य सोमदेव : यशस्तिलक
5. समण सुतं, 148, 149
6. वही,
7. गद्यचिन्तामणि
8. आचार्य शुभचन्द्र : ज्ञानार्णव, पृ.120
9. वही, 8/54
10. अमितिगति आचार्य : सामायिक पाठ
11. आचार्य अमृतचन्द्र : पुरूषार्थसिद्धयुपाय-44
12. वही, 49
13. **Maicel Scott:"An Appeal to Reason", Peace News, 14 March 1958, P.6**

आचार्य पदारोहण समारोह संपन्न

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर, जयपुर में 28 नवंबर, 2004, अगहन बदि द्वितीया को परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज का आचार्य पदारोहण दिवस बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। जिसमें संस्थान में मानद सेवा में रत श्री प्रकाश चन्द्र जी पहाड़िया भीलवाड़ा वालों ने मुनि अवस्था की शुरूआत से आचार्य श्री के संस्मरण से सभा प्रारम्भ की एवं अधिष्ठाता पं. श्री रतनलाल जी बैनाड़ा ने आचार्य श्री के व्यक्तित्व पर शताधिक प्रेरक प्रसंग के माध्यम से गुरु के अथाह गुणों का वर्णन किया। गुरु गुणगान सभा में संस्थान के शिक्षक गण, ब्र. भरत भैया एवं अधीक्षक ब्र. सुकान्त भैया ने आचार्य श्री से जुड़ी घटनाओं को सुनाकर आचार्य श्री को श्रद्धा सुमन अर्पित किये। अंत में संस्थान के छात्रों ने विविध स्वरचित कविताओं एवं भजनों से अपनी भावनाओं को प्रगट किया।

पं. मनोज शास्त्री, भगवां

वजन नियंत्रण में सहायक है हरी मिर्च

हरी मिर्च का सीमित मात्रा में सेवन अनेक रोगों से मुक्ति दिलाता है। हरी मिर्च का चरपरापन इसमें मिलने वाले कैप्सेकिन नामक तत्व के कारण होता है। मिर्च की तासीर गरम होती है। यह हल्की, रूखी व चरपरी होती है। यह वायु रोगों को दूर करती है तथा पित्त को बढ़ाती है। हरी मिर्च में विटामिन 'सी' की भरपूर मात्रा पाई जाती है।

- हरी मिर्च को पीसकर सरसों के तेल में पकाकर यह तेल चर्म रोगों पर लगाने से लाभ होता है।
- बिच्छू के काटने पर शीघ्र ही हरी मिर्च का लेप लगाने से लाभ होता है।
- वायु रोगों में आमवात, कमर दर्द व पार्श्व शूल में हरी मिर्च का लेप करने से आराम मिलता है।
- हरी मिर्च का रोजाना सेवन करने से भोजन के प्रति अरूचि दूर होती है।
- मोटे व्यक्ति को हरी या लाल मिर्च का सेवन करते रहने से वजन नियन्त्रण में मदद मिलती है।

'जिनेन्दु' (साप्ताहिक) अहमदाबाद, 31 अक्टू. 2004 से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल-मापन

डॉ. अभय खुशालचंद दगड़े, M.B.B.S.

काल की गणना या मापन करने की विधि कालमापन कहलाती है। इसका मूल हेतु मुख्यत: घटित हो चुकी तथा घटने वाली घटनाओं का क्रम कहना है।

इतिहास मतलब ''इति इह आसीत्''- यहाँ ऐसा हुआ, ऐसा निरूपण को इतिहास कहते हैं। (महापुरुष 9/25) इतिहास प्राचीन परम्परागत तथा ऐतिहासिक प्रमाण होने से इसका श्रुतज्ञान में अन्तर्भाव हो जाता है। (राजवार्तिक 9/20/95/78/19). अंग्रेजी में क्रॉनॉलॉजी (Chronology) या Era (इरा) कहते हैं।

जैन संस्कृति का इतिहास प्राप्त करने, परिचय पाने के लिए हमें जैन साहित्य व उनके रचयिताओं के काल आदि का अनुशीलन करना चाहिए। लेकिन यह कार्य कठिन हो जाता है, क्यूंकि ख्याति-लाभ की भावनाओं से अतीत वीतरागीजन अपनी साहित्यकृतियों में प्राय: अपने नाम, गाँव और काल का परिचय नहीं दिया करते। फिर भी उनकी कथन शैली, अन्य ग्रंथों में उनके उल्लेख, उनकी रचनाओं में ग्रहण किये गये अन्य शास्त्रों के उदाहरणों से, अपने गुरुजनों के स्मरणार्थ लिखी प्रशस्तियों से, आगम में उपलब्ध पट्टावलिओं से, भूगर्भ से प्राप्त शिलालेखों से या आयाग पट्टों से हम इन ग्रंथों के रचयिताओं का इतिहास मालूम कर सकते हैं।

ऐसे अभ्यास में शास्त्रों का, राजाओं का, आचार्यों का ठीक-ठीक कालनिर्णय करना बहुत जरूरी होता है। इसलिए विविध कालगणनाएं जो हैं, उनकी जानकारी तथा इनका आपसी तालमेल हमें मालूम होना अनिवार्य है।

कालगणना की पद्धतियाँ विभिन्न देश-प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार की दिखाई देती हैं। पूरे विश्व में अनेक प्रकार की ऐतिहासिक कालमापन पद्धतियाँ हैं जैसे चिनी, राजीप्शयन, बॉबेलोनिया और ऑसेरिया, न्यू, ग्रीक, रोमन, मध्य अमेरिकी, क्रिश्चन और भारतीय।

(मराठी विश्वकोश, खंड 3 रा)

अलग-अलग कालगणनाएँ भारत में क्यों?

1. भारत में कालगणना सूर्य, चंद्र या तारे-नक्षत्रों से की जाती हैं। इसलिए वर्ष चांद्र या सौर वर्ष की कल्पना की गई। 27 नक्षत्रों से, 12 राशियों से भी अनुमान लगाया जाता था।

2. ऐतिहासिक काल में आवागमन की सुविधाएँ नहीं थी। इसलिए संपूर्ण भारत वर्ष का फैलाव कहाँ तक और कैसे है, यह सिर्फ विद्वानों के ही समझ में आता था। पराक्रमी राजाओं का साम्राज्य जल्द आवागमन साधनों के अभाव में ज्यादा काल तक नहीं टिकता था। अत: छोटे-छोटे राज्य बनना स्वाभाविक था। ऐसे अलग-अलग प्रदेशों में भिन्न-भिन्न व्यवहार-आचार रहता था। ऐसी परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न कालगणनाएँ उत्पन्न होना स्वाभाविक था और हुआ भी वैसे ही।

3. भारत में विविध कालक्षेत्र में अलग-अलग आक्रमण हुए। अनेक परदेसी संस्कृति के लोग यहाँ आए। यहाँ ही बस्ती कर रहने लगे। उन्होंने जो कुछ अपने साथ आचार विचार, उच्चार, भाषाएँ इत्यादि लाए, उनमें कालगणनाएँ भी थी। जैसे ही उन्होंने यहाँ अपना राज्य, अधिकार स्थापित किया, उनकी कालगणनाएँ भी प्रचार में आ गई।

4. भारत के ऐतिहासिक काल में जो अत्यंत पराक्रमी राजा हो गये, उन्होंने अपने नाम से कालगणनाएँ शुरू की। विक्रमादित्य तथा शालिवाहन इन महान पराक्रमी राजाओं ने अपनी कालगणनाएँ शुरू की थी। उनके देखा देखी ''हम भी पराक्रमी अगर हैं, तो क्यों ना हम भी अपनी कालगणना शुरू करें'' ऐसा सोचकर कुछ राजाओं ने अपनी स्वतंत्र कालगणनाएँ शुरू की। चालुक्य, छठाँ विक्रमादित्य, अकबर, टीपू सुल्तान, शिवाजी ऐसे ही पराक्रमी राजाओं में से थे।

सारांश, भारत में गत 2500 वर्षों में करीबन पच्चीस तीस कालगणनाएँ उत्पन्न हुईं या चालू की गईं। इनमें से कुछ शुद्ध भारतीय, कुछ परकीय, कुछ मिश्र स्वरूप की थी। किन्हीं का प्रारंभ क्यों हुआ, समझ में आता है, किन्हीं का नहीं। ऐसी विविध कालगणनाओं में वर्ष कैसे पकड़े गये हैं, उनका चालू नाम वर्षों से तालमेल रखता है या नहीं, वर्ष चांद्र, सौर या चांद्रसौर है, महीना चंद्र या सूर्य से संबंधित है, चाँद अगर है तो वह अमान्त (अमावस्या से) या पूर्णिमान्त है, महीनों के दिन अंदाज से हैं, या हक प्रत्ययों से, दिनों के नाम किस प्रकार से हैं, तारीख तथा वार सूर्योदय से जुड़े हैं या चंद्रोदय/सूर्यास्त से, ऐसे अनेक विकल्प इसमें हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन कालगणनाओं में प्रमुख भारतीय कालगणना इस प्रकार हैं- अमली (कटकी, बंगाली, विलायती), इलाही, कलियुग, कोल्लम्, गांगेय, गुप्त, चालुक्य विक्रम, जव्हार, जुलुस, नेवार (नेपाड), पर्गनानी, पुदुवैणु, बहिस्पत्य, बुद्ध निर्वाण, वीर निर्वाण, शक, विक्रम, मौर्य, सप्तर्षी, सिंह, हर्ष, सिल्युसिडी, हिजरी, भाटिक, मगी, मल्लूदी, फसली इ.इ. **(मराठी विश्वकोश, खंड 3, पान नं. 782-83)**

जैनागम का अभ्यास करते समय मुख्यत: चार संवत्सरों का प्रयोग पाया जाता है। 1. वीर निर्वाण 2. विक्रम 3. ईसवी, 4. शक। इसके अलावा अन्य भी कुछ संवतों का व्यवहार होता है जैसे गुप्त संवत्, हिजरी संवत्, मघा संवत् आदि।

1. वीर निर्वाण संवत् : इस संवत् का प्रारंभ भगवान महावीर के निर्वाण समय से माना गया है। भगवान का निर्वाण विक्रम संवत् से 470 वर्ष पूर्व माना गया है। (श्रुतावतार-आ.इंद्रनंदी, तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, हरिवंशपुराण, धवला 1/प्र.32 H.L. Jain)

भगवान के निर्वाण संबंधी दो दृष्टियाँ मिलती हैं। ये दोनों दृष्टियाँ भगवान महावीर के समकालीन गौतम बुद्ध के देहत्याग, विक्रम संवत् का काल, तथा ईसवी सन से पूर्व के काल संबंध में हैं। जैसे-

1. बुद्ध के देहत्याग काल संबंधी काफी मताभिन्नता है, यद्यपि आसाम के राजगुरु के, जैन शास्त्रों के तथा श्रीलंका के मतानुसार बौद्ध देहत्याग काल इसवी सन पूर्व 544 माना जाता है। इस मतानुसार गौतमबुद्ध का बोधिलाभ से देहत्याग तक का काल ई.स.पूर्व 488 से 544 माना गया है तथा भगवान वीर का काल इसवी सन् पूर्व 557 से 527 माना गया है। और यह उचित भी लगता है तथा सभी प्राचीन शास्त्रों में ऐसा ही उल्लेख पाया जाता है। (जैन साहित्य इतिहास, गणेशप्रसाद वर्णीजी ग्रंथमाला, पृष्ठ नं.303)

2. राजा विक्रमादित्य के कारण शुरू हुये विक्रम **संवत्** के संदर्भ में भी दो दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं। एक के अनुसार भगवान का निर्वाण विक्रम संवत् पूर्व 470 वर्ष जो सर्वाधिक मान्य है, और दूसरी के अनुसार निर्वाण विक्रम संवत् पूर्व 488 वर्ष हुआ। यह भेद राजा विक्रमादित्य के राज्याभिषेक से या मृत्यु से विक्रम संवत् शुरू होना मानने के कारण है। निश्चित रूप से निर्वाण विक्रम संवत् से 470 वर्ष पूर्व ही माना गया है।

इस प्रकार दो दृष्टियाँ संक्षेप में कहें तो-

नाम	जन्म	आयु	वैराग्य	बोधि		निर्वाण	
	ई.पू.	वर्ष	ई.पू.	विक्रम संवत् पूर्व	ईसवी पूर्व	विक्रम संवत् पूर्व	ईसवी पूर्व
महावीर दृष्टि नं. 1	617	72	587	518	575	488	545
दृष्टि नं. 2	499	72	569	500	557	470	527
बुद्ध प्रसिद्धि	614	80	595		588		544

(जैन साहित्य इतिहास। पूर्वपीठिका। पृष्ठ संख्या 303)

यहाँ दृष्टि नं. 2 ही सबसे ज्यादा मान्यता प्राप्त है। अर्थात भ. महावीर निर्वाण विक्रम संवत् से पूर्व 470 वर्ष तथा ईसवी से 527 वर्ष पूर्व हुआ, यही सर्वमान्य है।

विक्रम संवत् : भारत का यह सर्वप्रधान संवत् है। कहीं कहीं विक्रम, शक तथा शालिवाहन इन तीनों संवतों को एक माना जाता है, लेकिन यह ठीक नहीं है। ये तीनों संवत् अलग-अलग हैं, स्वतंत्र हैं।

विक्रम संवत् कहाँ से शुरू हुआ, इसके बारे में इतिहासकारों की अलग-अलग मान्यताएँ हैं। कोई उसके राज्याभिषेक से तो कोई उसकी मृत्यु से, संवत् प्रारंभ हुआ ऐसा मानते हैं।

विक्रमादित्य यह उज्जयिनी का राजा। इसकी कालगणना, चारित्र्य, यहाँ तक कि अस्तित्त्व के बारे में भी कई इतिहासकार शंका करते हैं। लेकिन डॉ. राजवली पांडे जैसे इतिहास संशोधकों ने अनेक ग्रंथ (कथासरित्सागर, बृहत्कथा, सिंहासनबत्तीसी, वेताल पंचविशी, शुकसप्तति, जैन पट्टावली, जैन हरिवंशपुराण, प्रभावक चरित्र, प्रबंधचिंतामणी विक्रमचरित इ.इ), मंदसौर का अभिलेख, छोटी-छोटी मुद्रायें, ग्रीक इतिहासकारों का वर्णन ऐसी बहुत सी सामग्री का अध्ययन कर किया है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि, विक्रमादित्य यह काल्पनिक पुरुष ना होकर, ऐतिहासिक था और उसका काल ईसवी सन पूर्व पहिला शतक था। उसकी राजधानी उज्जयिनी थी, और वह मालवगण प्रमुख था। उसी ने शक राजा का पराभव कर उन्हें भगाया था, और उस विजय के प्रति ईसवी सन पूर्व 57 साल में अपने नाम से 'विक्रम संवत्' यह कालगणना चालू की। शक राजाओं का पराभव करने वाला, इसलिए लोग इसे 'शकार विक्रमादित्य' नाम से पहचानने लगे। आदर्श राजा के सभी गुण उसमें मौजूद थे।

(भारतीय संस्कृति कोश, खंड 8, पन्ना नं. 652)

अनेक जैन ग्रंथों में उसके राज्य शासन का गौरव पाया जाता है। दिगंबर तथा श्वेताम्बर दोनों आम्नायों में विक्रम संवत् का प्रचार वीर निर्वाण के 470 वर्ष पश्चात माना गया है।

(तिलोयपण्णत्ति 4/1505-06)

राजा विक्रमादित्य का, जन्म के पश्चात 18 वर्ष से राज्याभिषेक तथा 60 वर्ष तक उसका राज्य रहना लोक प्रसिद्ध है। विक्रम संवत् के बारे में अलग-अलग मान्यताएँ, उसकी शुरूआत कहाँ से हुई, इस बारे में हैं।

विक्रम संवत् का वीर निर्वाण से 470 वर्ष अंतर, शक संवत् के मध्य से 135 वर्ष का अंतर तथा ईसवी सन् के पूर्व 57 वर्ष का अंतर है, यह सुनिश्चित किया गया है।

3. शक संवत् : यद्यपि शक शब्द का प्रयोग ''संवत्'' सामान्य के अर्थ में भी किया जाता है, जैसे विक्रम शक, शालिवाहन शक इत्यादि, और कहीं कहीं विक्रम संवत् को भी शक संवत् मान लिया जाता है, परंतु जिस ''शक'' की चर्चा यहाँ हम कर रहे हैं यह एक स्वतंत्र संवत् है।

(जैन साहित्य इतिहास 297)

आज इसका प्रयोग प्राय: लुप्त हो चुका है फिर भी दक्षिण प्रदेशों में तथा अंशत: उत्तर में इसका प्रचार देखने में आता है। दक्षिण में इसके महीने अमान्त हैं, तो उत्तर में पूर्णिमान्त हैं। इसका आरंभ सामान्यत: चैत्र शुद्ध प्रतिपदा को मानते हैं। दक्षिण में शिलालेख, ताम्रपट, पुराण ग्रंथ, पोथीपुस्तक तथा कई ऐतिहासिक दस्तावेजों में इसका निर्देश आता है। पंचांग तैयार करने हेतु ज्योतिष शास्त्र विषयक अभ्यासू मुख्यत: इसी के आधार से पंचांग बनाते हैं।

यह काल किसने, कब, कैसे, शुरू किया तथा उसका शक या शालिवाहन से संबंध कब, किसने और कैसे जोड़ा, ये प्रश्न विचारणीय हैं।

(मराठी विश्वकोश भाग 3, पेज 789)

काफी विद्वानों के मतानुसार इसका संस्थापक कुशाणवंशी कनिष्क होना चाहिए। कुशाणवंशीय राजाओं में कनिष्क, हुविएक और वासुदेव ये ही महापराक्रमी तथा सार्वभौम राजा थे। उन्हीं के लेखों में कनिष्क का प्राचीनतम लेख है, इसलिए उसी ने यह शक काल स्थापित किया होना चाहिए। शक ये कुशाण राजाओं के क्षत्रप या प्रांताधपती थे। उन्हीं ने दीर्घकाल इस संवत् का उपयोग किया था। इसलिए कालौध में उसी को शक काल या शक नृपति काल आदि नाम मिले।

(मराठी विश्वकोश खंड 3 रा, पेज 789)

दिगम्बर तथा श्वेताम्बर आम्नाय में वीर निर्वाण के 605 वर्ष 6 मास पश्चात शक राजाकी उत्पत्ति मानी गई है। (तिलोयपण्णत्ति 4/1496, 1499, धवला 9/14,1,44 त्रिलोक सार 40, हरिवंशपुराण 60/559, तित्थोगाली पयन्ना 623, मेरूतुंगकृत 'विचारन्प्रेणी')

सभी शास्त्रों का आधार देखते हुए, वीर निर्वाण संवत् और शक संवत् में 605 वर्ष का अंतर, विक्रम और शक संवत् में 135 वर्ष का तथा ईसवी और शक संवत् में 78 वर्ष का अंतर माना जाता है। शालिवाहन शक का प्रचार वीर निर्वाण पश्चात् 741 वर्ष बाद माना जाता है। इसलिए शालिवाहन और शक संवत् में 136 वर्ष का अंतर आ जाता है।

4. ईसवी सन् : यह संवत् ईसा मसीह के स्वर्गवास के पश्चात् यूरोप में प्रचलित हुआ और अंग्रेजी साम्राज्य के साथ-साथ सारी दुनिया में फैल गया। यह आज विश्व का सर्वमान्य संवत् है। क्रिस्ती कालगणना की शुरूआत निश्चितत: कब हुई, इसके बारे में इतिहासकारों में एक मत नहीं है। फिर भी क्रिस्ती काल का शोध इटाली के 'डायोनिसिअस एक्झीगस' इस धर्मगुरु ने साधारणत: छठी शताब्दी में लगाया। कुछ लोग रोम शहर के जन्म से याने 1 जानेवारी 754 ए.यु.सी. (Ano urbis conditae) से करते हैं तो कुछ लोग येशु क्रिस्त के जन्म से, याने ईसवी सन पूर्व 25 दिसंबर से गृहीत समझकर!

इस कालगणना में शून्य ईसवी वर्ष ना समझकर ईसवी सन पूर्व। या ईसवी सन् 1, जानेवारी 1 यह तारीख शुरू में लेकर वहाँ से आगे क्रिश्चन वर्ष गिनते हैं। अर्थात् येशु क्रिस्त के जन्म की तारीख निश्चित ना होने से ये सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुमान कुछ धार्मिक कुछ पारंपरिक तत्वों पर आधारित हैं। फिर भी यह कालगणना आज दुनिया की सबसे ज्यादा मान्यता प्राप्त कालगणना है।

(मराठी विश्वकोश, खंड 3, पन्ना नं. 782)

यह कालगणना सौर पद्धति से है। इसके वर्ष का काल सूक्ष्मता से देखा गया तो 365 दिन 5 घंटे 48 मिनट और 45.37 सैकंड इतना है। इससे हर वर्ष में जो 5 घंटे से ज्यादा समय का फर्क पड़ता है, उसे कम करने हेतु हर 4 वर्ष से फरवरी के दिन 28 के बजाए 29 पकड़े जाते हैं (लीप इयर) लेकिन हर सौ साल में फरवरी की 29 तारिख भी नहीं पकड़ते। फिर भी इसमें फर्क होता ही है। इसमें भी ज्युलियन पद्धति, तेरहवा पोप ग्रेगरी पद्धति, इंग्लैंड पद्धति ऐसी अनेक मान्यताएँ हैं।

इस प्रकार उपरनिर्दिष्ट कालगणनाएँ भारत में देखने में आती हैं। तथा इनका आपसी तालमेल निम्ननिर्दिष्ट तालिका में बताया गया है। इसकी सहायता से कोई भी एक संवत् दूसरे में परिवर्तित किया जा सकता है।

क्रम	नाम	वीर निर्वाण	विक्रम संवत्	ईसवी सन	शक संवत्
1	वीर निर्वाण	-	पूर्व 470	पूर्व 527	पूर्व 605
2	विक्रम संवत्	470	-	पूर्व 57	पूर्व 135
3	ईसवी सन	527	57	-	पूर्व 78
4	शक संवत्	605	135	78	-

मुनि श्री प्रमाणसागर जी स्याद्वाद महाविद्यालय में

सुप्रसिद्ध दिगम्बर जैनाचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के परम तपोनिष्ठ अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी परमपूज्य मुनि श्री 108 प्रमाणसागर जी महाराज ससंघ सतना (म.प्र.) से अहिंसा सद्भावना पदयात्रा करते हुए काशी नगरी पहुँचे। इस अवसर पर भदैनी, वाराणसी स्थित शताब्दी समारोह वर्ष के अन्तर्गत आयोजित कार्यशाला में मंगल सान्निध्य प्रदान करने भगवान् सुपार्श्वनाथ की जन्म स्थली प्रांगण में महाविद्यालय पहुँचे जहाँ पर श्री स्याद्वाद महाविद्यालय के छात्रों, शिक्षकों, पदाधिकारियों ने प्रवेशद्वार पर पूज्य मुनिश्री की मंगल आरती उतारी तथा पादप्रक्षालन किया। इसके पश्चात् पूज्य मुनिश्री ने श्री 1008 सुपार्श्वनाथ जैन मंदिर में दर्शन किया।

इस अवसर पर स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी के शताब्दी वर्ष पर आयोजित समारोह को सम्बोधित करते हुए पूज्य जैन मुनि प्रमाणसागर जी महाराज ने कहा कि शिक्षा के साथ-साथ नैतिक संस्कार बढ़ाना जरूरी हैं। गुरुकुलों में जो नैतिकता, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा का पाठ पढ़ाया जाता है वह आज की वर्तमान शिक्षा पद्धति में नजर नहीं आता। आज की शिक्षा अर्थ की प्रधानता लिए हुए है जो जीवन के समग्र विकास में अधूरी है। किसी विद्यालय के 100 वर्ष पूर्ण होना अपने आप में गौरव की बात है। स्याद्वाद महाविद्यालय वर्णी जी के अथक परिश्रम की फलश्रुति है। मुनि श्री के गुरुणांगुरु आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज की शिक्षा स्थली होने से उनको भी याद किया। मुनि श्री ने विद्यालय के नये भवन एवं छात्रावास का भी अवलोकन किया।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार 2003

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इंदौर के अध्यक्ष श्री देवकुमार सिंह कासलीवाल ने वर्ष 2003 के कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार हेतु अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद् के अध्यक्ष प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, फिरोजाबाद को प्रदान करने की घोषणा की है। उन्हें यह पुरस्कार उनके लेख संग्रह '**समय के शिलालेख** एवं **चिन्तन प्रवाह**' के साथ ही कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ को दिये गये निस्पृह सहयोग एवं सतत् मार्गदर्शन हेतु प्रदान किया गया।

इस पुरस्कार के अंतर्गत प्राचार्य श्री जैन को 25,000 रुपये की नकद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र से सम्मानित किया जाएगा।

डॉ. अनुपम जैन, सचिव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधुओं की चर्या ज्ञान, ध्यान और तप में ही लगनी चाहिए

डॉ. नरेन्द्र जैन 'भारती'

जैन धर्म में 'आचार' का विशेष महत्व है। आचारहीन व्यक्ति की सर्वत्र निंदा की गई है। पतन का कारण आचरणहीनता को माना गया है। सदाचार का पालन और पाप रूप प्रवृत्तियों का विसर्जन जैन धर्म की प्रमुख विशेषता है। भोग प्रधान संस्कृति के विपरीत भारतीय संस्कृति योग की प्रधानता पर बल देती है। मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति या चंचलता को रोकना योग का कार्य है इसलिए, भारत के गृहविरत व्यक्ति 'योग' का अनुसरण करते हैं। योग का अर्थ है आत्मा में स्थिर हो जाना। गृहत्यागी आत्मा में ही स्थिर रहकर सुख प्राप्ति के प्रयास करता रहता है। यही पुरूषार्थ उन्हें संसार के दु:खों से मुक्ति दिलाता है। संसार में तो दु:ख ही दु:ख हैं। कहा गया है-

या संसार विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागै।
काहे को सुख साधन करते संयम सों अनुरागै॥

(वैराग्य भावना 8)

यदि संसार में सुख होता, तो तीर्थंकर संसार का त्याग क्यों करते? क्यों संसार में रहकर संयम की साधना करते। जब तीर्थंकर को भी संसार में सुख नहीं दिखाई दिया तभी तो उन्हें भी तपस्या करनी पड़ी। भगवान महावीर स्वामी ने बारह वर्ष तक कठोर तपस्या करके कर्मों को नष्ट किया इसके उपरांत ही मोक्ष गये। मोक्ष प्राप्ति के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का पालन आवश्यक है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान आत्मा की स्वाभाविक शक्ति हैं, जो व्यक्ति को नैसर्गिक रूप से प्राप्त हो सकती है। परन्तु सम्यक्चारित्र की प्राप्ति के लिए जीव को पुरूषार्थ करना पड़ता है। यदि यह पुरूषार्थ मनुष्य भव में किया जाय तो इस भव से अवश्य मुक्ति मिलती है। दूसरी गतियों के जीवों को भी पहले मनुष्य गति में आना होगा, क्योंकि मनुष्य गति से ही मुक्ति (मोक्ष) मिलता है। जैन धर्म का श्रद्धानी, ज्ञानी ऐसा जानकर संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होकर अपनी आचरण रूप क्रिया की शुद्धि हेतु श्रमण चर्या को अंगीकार करता है। श्रमण चर्या में व्यक्ति "आत्मा की साधना के लिए श्रम" करता है। उसकी साधना पापों के प्रायश्चित, कर्मों के दहन, स्वाध्याय, संयम और तप आदि में ही लगी रहती है। श्रमण शब्द "जैन संस्कृति में तपस्वी" का सूचक है। "श्राम्यति तपसा खिद्यत इति कृत्वा श्रमणो वाच्य:" अर्थात् जो आत्मा की साधना के लिए श्रम करता है और तप: साधना से शरीर को खेद खिन्न करता है वह श्रमण कहा जाता है। मल्लिषेणाचार्य कहते हैं-

देहे निर्ममता गुरो विनयता नित्यं श्रुताभ्यासता,
चारित्रोज्जवल मोहोपशमता संसार निर्वेगता।
अन्तर्बाह्य परिग्रहत्यजनतां धर्मज्ञता साधुता,
साधो साधुजनस्य लक्षण मिदं संसारविक्षेपणम्॥

अर्थात् शरीर के प्रति निर्ममता, गुरुओं की विनय करना, निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास करना, उज्जवल चरित्र पालना, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों को शांत रखना, संसार से डरना, अन्तरङ्ग और बाह्य परिग्रह के 24 भेद रूप परिग्रहों को छोड़ना, उत्तम क्षमादि दश धर्मों का पालन करना साधुपना है। आचार्य समन्तभद्र ने 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में कहा है-

विषयाशावशातीतो निरारम्भो परिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तः तपस्वी सः प्रशस्यते॥

अर्थात् विषय कषायों से रहित, आरम्भ परिग्रहों से परिमुक्त होकर ज्ञान, ध्यान और तप में लवलीन साधु ही सच्चे गुरु हैं। ये साधु अपनेआचरण के सुधार तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए निरन्तर 28 मूलगुणों का पालन करते हैं। वे 28 मूलगुण ये हैं-

पंचय महत्वयाइं समिदीओ पंच जिणवरू दिट्ठा।
पंचेविंदियरोहा छप्पिय आवासआ लोओ।
आचेलकमण्हाणं खिदिसयणमदंतघंसणं चेव,
ठिदि भोयणेय भत्तं मूलगुणा अट्ठवीसा दु॥

(मूलाचार)

प्रतिक्रमण पाठ में अट्ठाईस मूलगुणों के नाम की गाथा इस प्रकार है-

वदसमिंदिंदियरोधो लोचो आवासनमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च॥
एद खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णता।
एष पमादकदादो अइचारादोणियत्तोहं॥

पाँच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य) पाँच समिति (ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और व्युत्सर्ग) पाँच इन्द्रियों का निरोध (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण) छह आवश्यक (सामायिक, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग) लोच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(केशलोंच) आचेलक्य (नग्नत्व) अस्नान् क्षितिशयन (भूमि शयन) अदन्त धावन, स्थितिभोजन (खड़े होकर भोजन करना और एक भक्त (एक बार आहार) ये अट्ठाईस मूलगुण हैं। इनमें अतिचार की स्थिति में साधु (गुरु के समक्ष) प्रायश्चित लेता है। मुनियों के 34 उत्तर गुण कहे गये हैं। 22 परीषह, 12 तप और 34 उत्तरगुण हैं। क्षुधा, तृषा, उष्ण, दंसमशक, नग्न, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शयन, आक्रोश, बधबन्धन, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन ये 22 परीषह तथा अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान ये 12 तप कहे गये हैं। इन पर चलकर मुनि आध्यात्मिक शक्तियों का विकास कर मोक्ष प्राप्त करता है। इन गुणों का पालन कर व्यक्ति मन, वचन, काय को स्थिर कर सारा ध्यान आत्मा पर केन्द्रित करता है। आत्मा का चिंतन करता है ऐसा करने से 'आत्मज्ञान' की प्राप्ति होती है। आत्मज्ञान प्राप्त व्यक्ति की भावना इस तरह होती है-

अरि-मित्र महल-मसान, कंचन-कांच, निन्दन-थुतिकरन।
अर्घावतारन-असिप्रहारन, में सदा समता धरन॥

अर्थात् वे (मुनि) शत्रु-मित्र,, महल, श्मशान, कंचन (सोना) और काँच, निंदा और प्रशंसा करने वाले में, पूजन करने वाले और तलवार का प्रहार करने वाले में सदैव समता धारण करते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचनसार में कहते हैं-

समसत्तु बंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंस णिंदसमो।
समलोट्ठ कंचणो पुणं जीविदमरणे समो समणो॥
(241)

अर्थात् जिसे शत्रु और मित्र समान हैं, सुख-दुख समान हैं। प्रशंसा और निंदा के प्रति जिनको समता है जिसे लोठ (मिट्टी के ढेला) और सुवर्ण (सोना) समान है तथा जीवन-मरण के प्रति जिसको समता है, वह श्रमण है। श्रमण को यह ज्ञान होता है-

णाणेण दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो॥
(दर्शन पाहुड 30)

ज्ञान, दर्शन, तप और चारित्र रूप संयम गुण से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। ऐसा जिन शासन ने कहा है। अतः जिन शासन की आज्ञा को ही सर्वस्व मानकर दिगम्बर साधु अपनी चर्या आगे बढ़ाते रहते हैं। जैन साधुओं को इस बात का ज्ञान रहता है कि "देह विनाशी मैं अविनाशी" अर्थात् यह शरीर नाशवान है और मैं (आत्मा) अविनाशी हूँ। इसीलिए वे देह (शरीर) पोषण में नहीं शरीर का उपयोग ज्ञानार्जन, तप और ध्यान के लिए करते हैं। इसीलिए दिगम्बर साधुओं के लक्षण में "देहे निर्ममता" शब्द का प्रयोग किया है। जिसको संसार में रहते हुए शरीर से राग रहता है वह शरीर को कष्ट नहीं देना चाहता, वह अपने शरीर को ही श्रृंगारों से आपूरित करने में समय बर्बाद करता है। रात दिन सोलह श्रृंगार करता है और इसी में अपने जीवन का अमूल्य समय गँवा देता है। जबकि जिन्हें संसार, शरीर और भोगों की नश्वरता का सच्चा ज्ञान है वह सोचता है-

भोगो न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तपो न तप्ता वयमेव तप्ता।
कालो न याता वयमेव याता तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा॥

भोगों को तिलांजली देते हुए साधु समझता है कि भोगों को भोगते हुए हमने अपना सम्पूर्ण समय गँवा दिया परन्तु भोगों की तृप्ति नहीं हुई, तृष्णा का अंत नहीं हुआ इसलिए वह शरीर के सम्बन्ध में निर्ममत्व होकर सोचता है- **यावत्स्वस्थं शरीरस्य यावच्चेन्द्रिय सम्पदः।**
तावद्युक्तं तपः कर्मः वार्धक्ये केवलं श्रमः॥

अर्थात् जब तक शरीर स्वस्थ है और इन्द्रियों की सम्पदा है तब तक "तप" रूपी कर्म ही करना चाहिए। बुढ़ापे में तो सिर्फ व्यक्ति श्रम ही करता है। सप्तर्षि पूजा में सात मुनिवरों के तप के वर्णन में लिखा गया है-

जय शीतकाय चौपट मंझार, कै नदी सरोवर तट मंझार।
जय निवसत ध्यानारूढ होय रंचक नहिं मटकत रोम कोय॥
जय मृतकासन वज्रासनीय गोदूहन इत्यादिक गनीय।
जय आसन नानाभाँति धार, उपसर्ग सहित ममता निवार॥

इस तरह दिगम्बर (श्रमण) साधुओं का सिर्फ एक ही कार्य रह जाता है। ज्ञान और क्रिया। ज्यादा से ज्यादा आत्मस्थ होकर तप करके कर्मों का नाश करना और सतत् स्वाध्याय के माध्यम से "आत्मज्ञान" को बढ़ाना। मुनि का नग्नत्वपना अनाशक्ति भाव का प्रतीक, देह तपधारण के लिए, आहार, शरीर के पोषण के लिए नहीं वरन् तप करने के लिए केशलोंच, शरीर के प्रति अनाशक्ति या ममत्व रहित होने की स्थिति का स्वयं के आंकलन के लिए होता है। इसीलिए प्रत्येक साधु को संसार शरीर भोगों के प्रति मन से विरक्त होना चाहिए। बाह्य में नग्न होना अलग बात है परन्तु लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तरंग (मन) से भी अपरिग्रही बनना आवश्यक है। अत: साधुओं को 28 मूलगुणों तथा 34 उत्तर गुणों का सम्यक् पालन करते हुए अपनी नियमित चर्या रखनी चाहिए। श्रावक और जैनेतर व्यक्ति भी दिगम्बर मुनिराजों की तपस्या और त्याग के हृदय से प्रशंसक हैं और रहेंगे। उनके त्याग मार्ग के सभी कायल हैं। आज की भोगवादी परिस्थितियों में भी जिनकी भावना वस्त्र त्याग, तथा एक बार दिन में आहार की भी है तो वह भी श्रद्धास्पद है, पूज्य है, परन्तु जिसने स्वाध्याय किया है। चरणानुयोग का जानकार है वह तो यही अपेक्षा रखेगा कि श्रमण साधु, श्रमण धर्म में वर्णित क्रियाओं पर खरा उतरे। श्रद्धा दिगम्बरत्व के प्रति लोगों की है और निरन्तर बनी रहेगी। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि ''साधु'' योगमयी प्रवृत्ति पर विश्वास रखें। ज्ञान, ध्यान और तप उनका लक्ष्य होना चाहिए। परम दिगम्बर मुनियों के प्रात:काल दर्शन ही बड़े पुण्य के कारण मिलता है। पंचमकाल में मुनियों के दर्शन हो रहे हैं यह हम सबके लिए सौभाग्य की बात है। मुनियों की जीवन चर्या हम सभी लोगों की भावना को धर्ममय बनाये वैराग्य की ओर हमारी भावना बलवती हो तथा साधुओं का सान्निध्य प्राप्त कर हम सम्यक्चारित्र के पथ पर आगे बढ़ें, यह सभी की भावना होना चाहिए।

A-27 न्यू नर्मदा विहार, सनावद (म.प्र.)

जिनवाणी माँ

मनोज जैन 'मधुर'

जिनवाणी माँ नाव हमारी, भव सागर से तारो।
लाखों पापी तारे तुमने, हमको भी उद्धारो।

माता तेरे वरद हस्त की,छाँव तले जो आता है।
छटते कल्मष कोप उसी क्षण कुन्द-कुन्द बन जाता है।
भावों के हम अक्षत-चंदन लाए हैं स्वीकारो।

सात तत्व छ: द्रव्य बताए, अनेकांत समझाया है।
भव से पार उतर जाता है, जिसने तुमको ध्याया है।
सब कुछ सौंप दिया है तुमको, तुम्हीं हमें सम्हारो।

कुन्द-कुन्द से विद्यासागर, जो भी तुमको ध्याते हैं।
रत्नत्रय के चंदा-सूरज, उन सब को मिल जाते हैं।
सबके मन में भेद-ज्ञान, दीपक माँ उजियारो।

गौतम गणधर ने गूँथी है, महावीर की वाणी।
वचनामृत का पान करें सब, तर जाएंगे प्राणी।
अष्ट कर्म के इन रिपुओं को, माता तुम संहारो।

पाते वे ही मोक्ष लक्ष्मी, जिसने अंगीकार किया
अंजन चोर सरीखे पापी, पर माते उपकार किया।
मुक्तिवधू से हमें मिलाकर, हमको भी उपकारो।

C- 5/13, इन्दिरा कालोनी
बाग उमराव दूल्हा, भोपाल-10

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृतिक चिकित्सा

गर्भपात की प्राकृतिक चिकित्सा या सावधानियाँ

डॉ. वन्दना जैन

दुर्घटना चाहे कैसी भी हो कोई भी हो, परन्तु वह चोट अवश्य पहुँचाती है, तन और मन को। गर्भपात हो जाना भी एक दुर्घटना ही है पर इसे कुछ उपायों द्वारा रोका जा सकता है।

शरीर में संचित दूषित मल (विष) तथा गर्भाशय में संचित विजातीय विकार के सड़ने से गर्मी पैदा होती है, जो गर्भ को ठहरने नहीं देता नतीजन गर्भपात होता है। शरीर तथा गर्भाशय में संचित दूषित पदार्थ को प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा दूरकर गर्भाशय को शक्तिशाली बनाना ही गर्भपात रोकने की सही चिकित्सा है।

गर्भपात की संभावना को ध्यान में रखते हुए गर्भाधान के पहले ही चिकित्सा प्रारंभ कर देनी चाहिये। जिससे गर्भस्राव नहीं होता। पेडू पर मिट्टी की पट्टी आधा घंटा दें इसके बाद ठण्डा कटि स्नान, ठण्डा रीढ़ स्नान, गरम ठण्डा कटि स्नान बदल 2 कर दें। लगातार कुछ दिनों तक सूर्योदय के पूर्व 20 मिनिट चक्की चलाकर ठण्डा कटि स्नान दें। यह 5 मिनिट लेने से गर्भजन्य विकारों से मुक्ति मिलती है। सप्ताह में एक दो बार वाष्प स्नान, गर्भपाद स्नान, गीली चादर लपेट तथा धूप स्नान रोगी की स्थिति के अनुसार दें। गर्भावस्था में गर्म उपचार बंद रखें। गर्भकाल में प्रात:काल चक्की चलाना तथा ठण्डा कटि स्नान, दोपहर में मिट्टि पट्टी तथा रात्रि में पेडू की लपेट दें। कब्ज होने पर एनिमा दें।

योग चिकित्सा

गर्भाधान से पूर्व आसनों में कटि शक्ति विकासक, उदरशक्ति विकासक, कोणासन, पादहस्तासन, जसुशीर्षासन, पश्चिमोतनासन, वज्रासन, उष्ट्रासन, कूर्मासन, योगमुद्रा, चक्कीचालन आसन, विस्तृत, पादासन, उत्तनपादासन, धनुरासन, चक्रासन, शलमासन, भुजंगासन, सर्वांगासन, हलासन, अनुलोम, विलोम, उजजयी, प्राणायाम तथा शवासन करें। गर्भाधान के बाद इन आसनों को बंद रखें। गर्भावस्था में धीरे-धीरे सैर या चहल कदमी करना सर्वोत्तम तथा संतुलित व्यायाम है।

गर्भवस्था में आगे झुकने वाला कोई भी कार्य नहीं करें, पेट के बल नहीं लेटें। कमर को सीधा रखते हुए घुटनों से मोड़कर किसी भी चीज को उठायें। भारी वजन न तो उठायें और न सरकायें। सीढ़ियों पर चढ़ने उतरने का काम ज्यादा नहीं करें। ज्यादा देर नहीं बैठें। बैठना जरूरी हो तो आलती-पालथी मारकर, वज्रासन या सुखासन में आराम से बैठें। रसोई बनाते समय ऊँचे स्टूल या कुर्सी पर बैठें। ज्यादा देर बैठना हो तो पैरों के नीचे छोटा स्टूल रखें। पैरों को मिलाकर खड़ी न हों। खड़े होने पर पैरों को आगे पीछे, सुविधानुसार रखें। ऊँची ऐड़ी के जूते तथा चप्पल नहीं पहनें। गर्भपात के लक्षण दिखते ही बिस्तर पर विश्राम करायें। बिस्तर के पायदान की तरफ ईंट रखकर 6 से 9 इंच उठा दें। कमर के नीचे तकिया रखें। पेडू तथा योनि पर मिट्टि की पट्टी या खूब ठंडे पानी से भीगा तौलिया रखें इससे गर्भ की उत्तेजना कम होती है, तथा गुरुत्वाकर्षण के कारण गर्भपात रूक जाता है। गर्भपात की प्रवृत्ति वाली महिलाओं को ज्यादा से ज्यादा विश्राम करायें। शौच भी बैड पैक में करायें। उठने पर रक्तस्राव होने लगता है, पूर्ण स्वस्थ होने पर ही बिस्तर से उठने दें। घर पर या अन्य कार्यों में धीरे-धीरे लगें। गर्भपात प्राय: नियमित माहवारी काल में होता है। अत: उन दिनों सावधानी रखें। कुछ महिलाओं में गर्भाधान के बाद भी दो तीन माह तक माहवारी के लक्षण दिखते हैं। ऐसी स्थिति में विश्राम करायें। सादे गर्म पानी का एनिमा देकर पेट साफ रखें ठण्डा कटि स्नान अथवा योनि पर ठण्डी पट्टी दें। प्रात: काल एक गिलास पानी में एक नीबू तथा गुड़ मिलाकर पिएं।

आहार चिकित्सा

नाश्ते में अंकुरित (अथवा रात भर भीगी हुई) मूंग, मोठ, गेहूँ, तिल, मूँगफली, मसूर, सोयाबीन, चना भीगा हुआ। किशमिश, मुनक्का, खजूर, टमाटर, लौकी, पेठा या संतरे का रस दें गाजर व पालक लेते हों तो वह भी लें। भोजन में मोटे आटे की दो घंटे पहले गाजर या पालक, चकुन्दर के रस में गुदी हुई रोटी, सब्जी, सलाद तथा दही लें।

मध्यान्ह काल में अंकुरित गेहूँ, मूंगफली, तिल, केला, खीरा, ककड़ी, कद्दू के बीज, नारियल तथा खजूर को पीसकर बनाया हुआ दूध एक गिलास तथा मौसमानुसार फल, पालक, टमाटर का रस, दूध देने तथा नारियल का पानी या छाछ पर्याप्त मात्रा में लें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भपात तथा बांझपन को दूर करने के लिए अंकुरित गेहूँ के विविध व्यंजन कमाल का काम करते हैं। अंकुरित गेहूँ में गर्भपात तथा बन्धत्व को रोकने वाला फेक्टर टोकोफेराल (विटामिन ई) पाया जाता है। गर्भावस्था तथा गर्भ के पहले से अंकुरित गेहूँ का दूध, लस्सी, दलिया, मोटे आटे की रोटी तथा हाथकुटा चावल प्रयोग करें।

गर्भपात की चिकित्सा होने के बाद भी नहीं रूके, भ्रूण की मृत्यु हो जाये तो उस स्थिति में प्रकृति गर्भ को स्वत: निकालकर माँ के प्राणों की रक्षा करती है। प्रकृति के इस कार्य में सहयोग के लिए पेडूयोनि तथा कमर पर गर्म ठंडा सेंक करें। तथा स्तन पर ठण्डी पट्टी रखें। अधिक रक्तस्राव होने पर पेडू तथा योनि पर खूब ठण्डे पानी की पट्टी या शुद्ध मिट्टी रखें।

स्वाभाविक प्रसव प्राकृतिक प्रक्रिया है इससे माता को सृजन का सुख एवं आनंद मिलता है। इसी विशिष्ट गरिमा के कारण माँ को पूज्य माना है। जननी के बाद ही स्त्री के स्वास्थ्य, सौंदर्य एवं सौरभ में निखार आता है। गर्भपात इतना घातक एवं हानिकारक है कि यह नारी के जीवन को निचोड़कर कांतिविहीन एवं रोगी बना देता है। प्राकृतिक उपचार एवं प्राकृतिक जीवन अपनाकर गर्भपात से बचें।

कार्ड पैलेस, वर्णी कालोनी, सागर (म.प्र.)

एलोरा में आ. विद्यासागर भवन का उद्घाटन

पूजनीया आर्यिकारत्नद्वय श्री अनंतमती जी व श्री आदर्शमति माताजी की प्रेरणा से निर्मित 'आचार्य विद्यासागर भवन' का उद्घाटन समारोह दिनांक 13 फरवरी 2005 को अपराह्न 2 बजे श्री रतनलाल जी बैनाड़ा (आगरा) की अध्यक्षता में श्री समन्तभद्र दिगम्बर जैन गुरुकुल, एलोरा (महाराष्ट्र) में सम्पन्न होगा। इस अवसर पर श्री सभागृह उद्घाटक श्री देवेन्द्र कुमार सिंघई, मुँगावली, श्रुत भण्डार उद्घाटक श्री बाबूलालजी तोताराम जी लुहाड़िया, भुसावल, मुख्य अतिथि प्रो. रतनचन्द्र जी जैन, भोपाल (संपादक जिनभाषित), श्री अरविन्द कुमार जी सिंघई, मुँगावली, श्री शान्तिलालजी गोधा, रतलाम, श्री पवन कुमार जी झांजरी, नंदुरबार होंगे।

पन्नालाल गंगवाल, मंत्री

ज्ञानोदय पुरस्कार घोषित

शान्तिदेवी रतनलाल बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमल बोबरा द्वारा स्थापित ज्ञानोदय फाउंडेशन द्वार प्रवर्तित तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ इन्दौर द्वारा संचालित ज्ञानोदय पुरस्कार त्रिसदस्यीय निर्णायक की अनुशंसा के आधार पर वर्ष 2002-2003 हेतु निम्न पुरस्कारों की घोषणा की गई।

1. ज्ञानोदय पुरस्कार 2002 **'जैनिज्म इन आन्ध्रा'** कृति पर
डॉ. जी. जवाहर, हैदराबाद

2. ज्ञानोदय पुरस्कार 2003 **'गिरनार महात्म्य'** शीर्षक कृति पर
श्री रामजीत जैन 'एडव्होकेट' ग्वालियर

इस पुरस्कार के अन्तर्गत 11,000 रुपये नकद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान कर सम्मानित किया जाता है।

डॉ. अनुपम जैन, सचिव

कटे-फटे होंठ एवं तालुओं का आपरेशन

भाग्योदय तीर्थ चिकित्सालय, सागर में प्रतिवर्षानुसार इस वर्ष भी डॉ. एम.के.पाण्ड्या, जैना फाउण्डेशन, अमेरिका के सौजन्य से दिनांक 13 फरवरी 2005 से 20 फरवरी 2005 तक हृदय, मस्तिष्क एवं शल्य चिकित्सा शिविर का आयोजन किया जा रहा है, जिसमें देश-विदेश के सुपर स्पेशलिस्ट डॉ. महेन्द्र पाण्ड्या, हृदय रोग विशेषज्ञ अमेरिका, डॉ.व्ही.के. जैन, हृदय रोग विशेषज्ञ, लंदन, डॉ. नितिन जैन, हृदय रोग विशेषज्ञ, अहमदाबाद, डॉ. दीपक जैन, मस्तिष्क मिर्गी, लकवा रोग विशेषज्ञ, इंदौर, डॉ. मनीष जैन, पेट एवं लीवर रोग विशेषज्ञ, भोपाल, डॉ. अशोक जैन, पैथालॉजिस्ट, इंदौर, डॉ. व्ही.के. रैना, शिशु शल्य चिकित्सक, जबलपुर, डॉ. अश्विन ऑपटे शिशु शल्य चिकित्सालय, भोपाल, डॉ. श्रीमती मंजू जैन, स्त्री रोग विशेषज्ञ, लंदन, डॉ. महावीर सोवेतकर, किडनी एवं मूत्र रोग विशेषज्ञ, महाराष्ट्र, डॉ. महावीर कोठारी, यूरो सर्जन, महाराष्ट्र, डॉ.एस.जे आचार्य, किडनी रोग विशेषज्ञ, नागपुर, डॉ. मनीष जैन, निश्चेतना विशेषज्ञ, मेरठ, कीर्ति जैन, नेत्र रोग विशेषज्ञ, मेरठ अपनी सेवायें प्रदान करेंगे।

शिविर में कटे होंठ एवं तालू, हाईड्रोसिल, अपेन्डेक्स, बच्चादानी, रीढ़ की हड्डी, आँत की विकृति, श्वास एवं खाने की नली की विकृति, हॉर्निया, ट्यूमर, खून की नलियों के गुच्छे पाईल्स, किडनी, पेशाब के रास्ते की विकृति एवं नेत्र रोग संबंधी आपरेशन किये जायेंगे तथा हृदय एवं मस्तिष्क रोग के मरीजों को भी स्वास्थ्य लाभ दिया जायेगा।

इस हेतु चिकित्सालय में पूर्व परीक्षण एवं पंजीयन प्रारंभ है। पंजीयन अंतिम तिथि 10 फरवरी 2005 है।

ब्र. डॉ. रोहित, शिविर समन्वयक
भाग्योदय तीर्थ चिकित्सालय, खुरई रोड, सागर
फोन - 266671, 266271

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता - श्रीमति सरिता जैन, नन्दुरवार

जिज्ञासा - भगवान महावीर के समवशरण में जम्बूस्वामी कितनी उम्र के थे?

समाधान - भगवान महावीर के समवशरण में जम्बूस्वामी के गमन का कोई प्रकरण किसी शास्त्र में नहीं मिलता है। जम्बू स्वामी के जीवन चरित्र के अनुसार निम्न बातें स्पष्ट होती हैं।

राजगृही नगरी के सेठ अर्हद्दास तथा सेठानी जिनमती की कोख से भगवान महावीर के निर्वाण से 22 वर्ष पूर्व फागुन सुदी पूर्णमासी को जम्बूकुमार का जन्म हुआ। अर्थात् जब भगवान महावीर को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था तब आप देव पर्याय में थे। उत्तर पुराण पर्व 76 श्लोक 31 से 42 में इस प्रकार कहा है ' श्रेणिक ने गणधर स्वामी को पूछा कि हे प्रभो, इस भरत क्षेत्र में सबसे पीछे स्तुति करने योग्य केवलज्ञानी कौन होगा? इसके उत्तर में गणधर कुछ कहना ही चाहते थे कि उसी समय वहाँ विद्युन्माली नामक ब्रह्मस्वर्ग का इन्द्र आ पहुँचा। ..... उसकी ओर दृष्टिपात कर गणधर स्वामी कहने लगे आज से सातवें दिन यह ब्रह्मेन्द्र स्वर्ग से च्युत होकर इसी नगर के सेठ अर्हद्दास के यहाँ जन्म लेगा। यह यौवन के प्रारंभ से ही विकार से रहित होगा। मैं जब केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद विहार करता हुआ विपुलाचल पर आऊँगा तब जम्बूकुमार दीक्षा लेने को उत्सुक होगा पर भाई-बंधु के समझाने से वह तब दीक्षा न ले पाएगा आदि। अर्थात् भगवान महावीर के समवशरण में जम्बू कुमार नहीं आ पाये थे। बाद में उन्होंने सुधर्माचार्य गणधर के समीप दीक्षा धारण की। जब गौतम स्वामी को मोक्ष हुआ था तब सुधर्मा स्वामी को केवलज्ञान हुआ और जम्बूस्वामी श्रुत केवली हो गये। बारह वर्ष बाद सुधर्मास्वामी को मोक्ष हो गया और जम्बू स्वामी केवली बने। 40 वर्ष तक धर्मोपदेश देकर उनको मोक्ष प्राप्त हुआ अर्थात्

जन्म - वीर निर्वाण से 22 वर्ष पूर्व

दीक्षा - वी.नि. संवत् 2

केवल ज्ञान - वी. नि. संवत् 23 जेठ शुक्ला 7

मोक्ष - आयु 84 वर्ष, वी.नि. संवत् 62

प्रश्नकर्ता - पं. नवीन जैन शास्त्री, ललितपुर

जिज्ञासा - अकृत्रिम जिनालयों में कौन सी प्रतिमाएँ होती हैं? अर्हंत भगवान या सिद्ध भगवान की।

समाधान - इस प्रश्न के समाधान में यह भी समझना उपयुक्त होगा कि अर्हंत और सिद्ध प्रतिमाओं में क्या अन्तर होता है।

श्री त्रिलोकसार पृष्ठ 759 पर कहा है कि जो अष्टप्रातिहार्य संयुक्त होती हैं वे अर्हंत प्रतिमा हैं और जो अष्टप्रातिहार्य रहित होती हैं, वे सिद्ध प्रतिमा होती हैं। वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठ तृतीय परिच्छेद के अनुसार प्रमाण इस प्रकार हैं:

प्रातिहार्याष्टकोपेतं, सम्पूर्णावयवं शुभम्
भावरुपानुविद्धाङ्गं, कारयेद् बिम्बमर्हंता ॥ 69 ॥
प्रातिहार्यैर्विना शुद्धं, सिद्धं बिम्बमपीदृशः।
सूरीणां पाठकानां च, साधूनाम् च यथागमम् ॥ 70 ॥

अर्थ : अष्टप्रातिहार्यों से युक्त, सम्पूर्ण अवयवों से सुन्दर तथा जिनका सन्निवेष (आकृति) भाव के अनुरूप है ऐसे अरहन्त बिम्ब का निर्माण करें ॥ 69 ॥

सिद्ध प्रतिमा शुद्ध एवं प्रातिहार्य से रहित होती हैं। आगमानुसार आचार्य, उपाध्याय एवं साधुओं की प्रतिमाओं का भी निर्माण करें ॥ 70 ॥

इसी प्रकार जयसेन प्रतिष्ठा पाठ तथा श्री आशाधर प्रतिष्ठा सारोद्धार में भी प्राप्त होता है।

अब प्रश्न के उत्तर पर विचार किया जाता है-

श्री त्रिलोकसार में इस प्रकार कहा है-

मूलगपीठणिसण्णा चउद्दिसं चारि सिद्धजिणप्रडिमा।
तप्पुरदो महकेदू पीठे चिट्ठंति विविहवण्णणगा ॥
(1002)

गाथार्थ : चारों दिशाओं में उन वृक्षों के मूल में जो पीठ अवस्थित हैं उन पर चार सिद्ध प्रतिमाएँ और चार अरहन्त प्रतिमाएँ विराजमान हैं। उन प्रतिमाओं के आगे पीठ हैं जिनमें नाना प्रकार के वर्णन से युक्त महाध्वजाएँ स्थित हैं ॥ 1002 ॥

श्री तिलोयपण्णत्ती में इसप्रकार कहा है:

भवण-खिदि-प्पणिधीसुं, वीहिं पडि होंति णव-णवा थूहा।
जिण-सिद्ध-प्पडिमाहिं, अप्पडिमाहिं समाइण्णा ॥ 853 ॥

अर्थ : भवन-भूमि के पार्श्वभागों में प्रत्येक वीथी के मध्य में जिन (अर्हन्त) और सिद्धों की अनुपम प्रतिमाओं से व्याप्त नौ-नौ स्तूप होते हैं ॥ 853 ॥

उपरोक्त प्रमाणों के अनुसार अकृत्रिम चैत्यालयों में अर्हंत प्रतिमा और सिद्ध प्रतिमा दोनों होती हैं।

प्रश्नकर्ता - कान्ताप्रसाद जी, मुज्जफरनगर

जिज्ञासा - क्या नरक में पंचस्थावर जीव पाये जाते हैं?

समाधान - स्थावर जीव सर्वलोक में पाये जाते हैं। श्री षटखण्डागम में इस प्रकार कहा है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'इंदियाणुवादेण एइन्दिया बादरासुहमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडि खेत्ते? सव्वलोगे॥ 1/3/17॥' षटखण्डागम

अर्थ - इन्द्रियमार्गणा के अनुवाद से एकेन्द्रिय जीव, वादर एकेन्द्रिय जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव पर्याप्त तथा अपर्याप्त कितने क्षेत्र में रहते हैं? सर्वलोक में।

श्री वीरसेन आचार्य ने इस सूत्र की टीका में लिखा है- **'सत्थाण-वेदण-कसाय-मारणंतिय-उववादगदा एइंदिया केवडि खेत्ते? सव्वलोगे।' (धवल पु. 4 पृष्ठ 82)**

अर्थ - स्वस्थान, वेदना-समुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात और उपपाद को प्राप्त एकेन्द्रिय जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सर्व लोक में रहते हैं।

नरकों में एकेन्द्रिय जीवों के निवास पर धवला पुस्तक-7 में कहा है कि अधोलोक के आठ प्रथ्वीयों में इन्द्रियों से अग्राह्य व अतिशय सूक्ष्म पृथ्वी सम्बद्ध अग्निकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों का वहाँ अस्तित्व पाया जाता है। जिन पृथ्वीयों में शीत और उष्णता है ये उनके ही पृथ्वी गुण हैं। नरकों में शीत से भी उत्पन्न होने वाले पगण और कुहुण वनस्पति विशेष वहाँ पाये जाते हैं। अत्यन्त उष्णता में भी उत्पन्न होने वाले जवासद आदि वनस्पति विशेष वहाँ पाये जाते हैं।

उपरोक्त प्रकरण के अनुसार नरकों में पंचस्थावर जीवों का अस्तित्त्व मानना चाहिए।

प्रश्नकर्ता - पं. देवेन्द्र कुमार, जबलपुर

जिज्ञासा - भगवान को पहनाए जाने वाले वस्त्राभूषण क्या देवोपुनीत होते हैं?

समाधान - उपरोक्त प्रश्न के समाधान में श्री त्रिलोकसार गाथा 520-21 और 22 में इसप्रकार कहा गया है:

प्रथम स्वर्ग की सुधर्मा सभा के आगे एक योजन विस्तार वाला और 36 योजन ऊँचा पादपीठ से युक्त बज्रमय मानस्तम्भ है। उस मानस्तम्भ पर एक कोस लम्बे और पाव कोश विस्तृत रत्नमय सींकों के ऊपर तीर्थंकरों के पहनने योग्य अनेक प्रकार के आभरणों से भरे हुए पिटारे स्थित हैं। सौधर्म कल्प में स्थित मानस्तम्भ पर स्थापित पिटारों के आभरण भरत क्षेत्र संबंधी तीर्थंकरों के लिए हैं। ऐशान कल्प में स्थित मानस्तम्भ पर स्थापित पिटारों के आभरण ऐरावत के तीर्थंकरों के लिए हैं। इसी प्रकार सानत्कुमार कल्प में स्थित मानस्तम्भ के पिटारों के आभरण पूर्वविदेह संबंधी तीर्थंकरों के लिए और माहेन्द्र कल्प में स्थित मानस्तम्भ पर स्थापित पिटारों के आभरण पश्चिम विदेह संबंधी तीर्थंकरों के लिए हैं। ये सभी पिटारे देवों द्वारा स्थापित और सम्मानित हैं।

इस प्रकार सभी तीर्थंकरों के आभूषण देवोपुनीत होते हैं और उपरोक्त स्वर्गों में स्थित पिटारों से देवों द्वारा लाये जाते हैं।

जिज्ञासा - चारों गतियों के जीवों के कौन-कौन सा संहनन होता है?

समाधान - श्री सिद्धान्तसार दीपक अधिकार - 11 के श्लोक नं. 118 से 130 तक इसका विस्तार से वर्णन है, जिसका अर्थ इस प्रकार है : म्लेच्छ मनुष्यों, विद्याधरों, मनुष्यों, संज्ञीपंचेन्द्रिय तिर्यंचों और कर्मभूमिज तिर्यंचों के छहों संहनन होते हैं ॥ 118॥ असंज्ञी तिर्यंचों के विकलेन्द्रिय जीवों के और लब्धपर्याप्तक जीवों के असंप्राप्तासृपाटिका नामक छठा संहनन होता है॥ 119॥ परिहार विशुद्धि संयम से युक्त मुनिराजों के प्रथम तीन बज्रवृषभनाराच, बज्रनाराच तथा नाराच ये तीन संहनन होते हैं॥ 120-21॥ कर्मभूमिज द्रव्यवेदी स्त्रियों के अर्धनाराच, कीलक तथा असंप्राप्तासृपाटिका ये तीन संहनन होते हैं। भोगभूमिज मनुष्यों और स्त्रियों के प्रथम बज्रवृषभ-नाराच सहंनन होता है। 122-23॥ एक मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सप्तम गुणस्थान पर्यन्त जीवों के छहों सहंनन होते हैं॥ 124॥ उपशम श्रेणीगत 8-9-10 तथा 11 वें गुणस्थान में प्रवृत्तमान मुनिराजों के प्रथम तीन संहननों में से कोई एक होता है। जबकि क्षपक श्रेणीगत 8 वें-9वें-10वें, 12वें गुणस्थानवर्ती मुनिराजों के एक सयोग केवली भगवान के प्रथम संहनन होता है॥ 125 से 128॥ अयोगकेवलियों के, देवों के, नारकियों के, आहारक शरीरी महाऋषियों के, एकेन्द्रिय जीवों के और विग्रहगति स्थित जीवों के कोई संहनन नहीं होता॥ 129-130॥

जिज्ञासा - स्थावर काय की उत्कृष्ट व जघन्य अवगाहना कितनी है?

समाधान - एकेन्द्रिय जीव की जघन्य अवगाहना, ऋजुगति से सूक्ष्म एकेन्द्रियों में उत्पन्न होने वाले लब्धि अपर्याप्तक निगोदिया जीव की उत्पत्ति के तृतीय समय में घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है तथा उत्कृष्ट अवगाहना स्वमभूरमण दीप के मध्यवर्ती भाग में उत्पन्न कमल की होती है, जो एक हजार योजन लम्बा × 1 योजन चौड़ा और एक योजन मोटा होता है। श्री मूलाचार गाथा 1090 में इस प्रकार कहा है:

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयह्मि।
हवदि दु सव्वजहण्णं सव्वुक्कस्सं जलचराणं॥ 1090॥

गाथार्थ - सूक्ष्मनिगोदिया अपर्याप्तक के उत्पन्न होने के तृतीय समय में सर्वजघन्य शरीर होता है और जलचरों का शरीर उत्कृष्ट होता है॥ 1090॥

साहियसहस्समेयं तु जोयणाणं हवेज्ज उक्कस्सं।
एयंदियस्स देहं तं पुण पउमत्ति णादव्वं॥ 1072॥

गाथार्थ : एकेन्द्रिय जीव का उत्कृष्ट शरीर कुछ अधिक एक हजार योजन होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

तीर्थ क्षेत्र कमेटी के ध्रौव्यफंड के लिए सहयोग प्रदान करें

पैठण (महाराष्ट्र) भारतवर्षीय दिगंबर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी इस समय कई मोर्चों पर एक साथ संघर्ष कर रही है। सभी के सहयोग और सद्भावनाओं के फलस्वरूप हमें सफलतायें भी मिली हैं। रांची हाईकोर्ट ने अपने निर्णय में सम्मेदशिखरजी के पर्वत पर श्वेतांबर समाज के अधिपत्य को नकार दिया है। यह एक बड़ी सफलता है। इस केस में तीर्थक्षेत्र कमेटी को 48 लाख रुपयों की राशि खर्च करना पड़ी है। गिरनार जी प्रकरण में हमें लंबा संघर्ष करना पड़ेगा। अंतरिक्ष पार्श्वनाथ (शिरपुर), केशरिया जी आदि अनेक स्थानों पर भी श्वेतांबर समाज से हमें मुकदमाबाजी करनी पड़ रही है। कई चुनौतियाँ हमारे सामने हैं।

भा.दि.जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी का जो ध्रौव्यफंड है उससे मिलने वाला ब्याज भी बैंक ब्याज दरों के परिवर्तन के कारण कम हो गया है। फलस्वरूप कमेटी की आय भी कम हो गई है। इसी कारण तीर्थ क्षेत्रों को दो वर्षों से आर्थिक सहायता राशि भी नहीं दे पा रहे हैं। तीर्थ क्षेत्र कमेटी के ध्रौव्यफंड को बढ़ाकर 10 करोड़ रुपयों का करने का लक्ष्य आप सभी के सहयोग से पाना है। आप सभी तीर्थ क्षेत्र कमेटी को सक्षम और समृद्धिशाली बनायें उक्त आशय के उद्गार भा.दि.जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष नरेश सेठी आई.ए.एस. ने अतिशय क्षेत्र पैठण (महाराष्ट्र) में आयोजित महाराष्ट्र प्रांतीय (आंचलिक) दिगंबर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के 16 वें अधिवेशन में व्यक्त किये।

श्री सेठी जी ने कहा कि अब तक 10 प्रदेशों ने जैन समाज को अल्पसंख्यक घोषित किया है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने केंद्र सरकार को जैन समाज को अल्पसंख्यक घोषित करने की समय सीमा निर्धारित की है जिस पर केंद्रीय सरकार का जवाब न्यायालय में जाना है। अल्पसंख्यक आयोग ने भी जैन समाज को अल्पसंख्यक घोषित करने की अनुशंसा की है।

श्री सेठी जी ने कहा कि गिरनार प्रकरण के निराकरण के लिए 24 नवंबर को अहमदाबाद में एक बैठक का आयोजन किया गया था। जिसमें निर्णय लिया गया कि महासमिति, परिषद्, महासभा, दक्षिण भारत सभा, बंडी लाल जैन कारखाना, विद्वतपरिषद्, निर्मलध्यान केन्द्र, शास्त्रीपरिषद्, तीर्थक्षेत्र कमेटी के प्रतिनिधियों सहित एक 11 सदस्यीय कमेटी का गठन किया गया है जो निर्णय करेगी कि किस तरह हमें इस प्रकरण को सुलझाना है। इसी तारतम्य में हमने राष्ट्रव्यापी आंदोलन की कार्य योजना भी बनाई है जिस पर चिंतन चल रहा है जो शीघ्र ही समाज के सामने प्रस्तुत किया जायेगा।

श्री सेठी जी ने कहा कि पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें भी 10 वर्ष तक बंद की जावें ऐसा सभी से विनम्र अनुरोध है। सभी संघों से भी इस संबंध में चर्चा की जावेगी। आज आवश्यकता है शिक्षा मंदिरों के स्थापित करने की। हमें अपनी समाज के नवयुवकों को अच्छी शिक्षा उपलब्ध करानी है। सरकार अल्पसंख्यकों की शिक्षण संस्थाओं को अनुदान भी देती है हमें उसका लाभ भी लेना है। तकनीकी एवं मेडीकल कालेजों में हम अपनी समाज के 50 प्रतिशत छात्रों को उनमें प्रवेश दे सकते हैं।

उन्होंने कहा कि राज्य एवं केंद्र सरकार तीर्थ क्षेत्रों पर सड़क, पानी, बिजली, दूरसंचार के साथ आवास के लिए कई योजनायें संचालित कर रही है। हमें इन व्यवस्थाओं पर क्षेत्रों की राशि खर्च करने की जरूरत नहीं है। आप सभी कार्ययोजना बनाकर शासन से लाभ प्राप्त करें।

इस अवसर पर तीर्थ क्षेत्र कमेटी के वरिष्ठ उपाध्यक्ष द्वय शरद साहू एवं कमल बड़जात्या (राजश्री पिक्चर्स), कोषाध्यक्ष जम्बूकुमार सिंह कासलीवाल, मंत्री शरद जैन, अभिनंदन सांधेलीय मंत्री भा.दि.जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी मध्यांचल भी उपस्थित थे। उक्त सभी पदाधिकारियों का विभिन्न तीर्थों से आये प्रतिनिधियों ने भावभीना स्वागत करते हुए हर्ष व्यक्त किया कि हमारे बीच आज पूरी राष्ट्रीय तीर्थ क्षेत्र कमेटी उपस्थित हुई है।

महाराष्ट्र प्रांतीय तीर्थ क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष डॉ. पन्नालाल पापडीवाल ने कार्यक्रम का संचालन करते हुए कहा कि आपने निर्वाचन के डेढ़ माह के भीतर ही हमारे अध्यक्ष महोदय ने सक्रियता से कार्य करना प्रारंभ कर दिया है। सबसे पहले आपने महाराष्ट्र प्रांत का आमंत्रण स्वीकार किया और आज हमारे बीच हैं। महाराष्ट्र प्रांत के 80 प्रतिशत तीर्थ पूर्ण विकसित हो चुके हैं, शेष भी शीघ्र विकसित हो जावेंगे।

अभिनंदन सांधेलीय, पत्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री क्षमासागर जी की चार कविताएँ

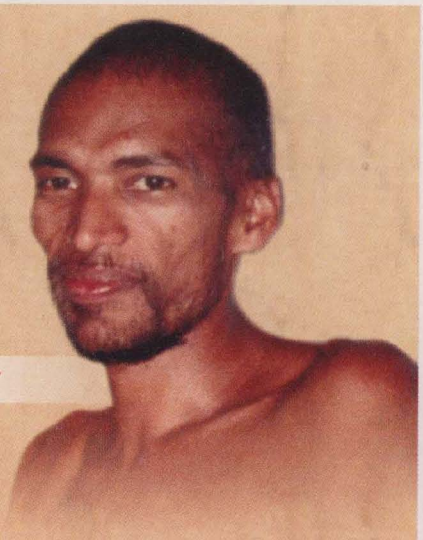

निशाना

जब भी मैंने
किसी और को
निशाना बनाया
और अपने जीतने का
जश्न मनाया
मैंने पाया, मैं ही हारा,
अनजाने ही
मेरा तीर
मुझसे टकराया
शिकार मैं ही बना
और कई रोज तक
कराहती रही
मेरी घायल चेतना।

कुछ भी नहीं

प्यासा मृग
मरीचिका में उलझा
और तड़प उठा
हमने कहा,
बेचारा मृग!
स्वाद की मारी मीन
काँटे-में उलझी
और मर गयी
हमने कहा,
अभागी मीन!
एक पतंगा
दीपक की
जोत पर रीझा
और झुलस गया
हमने कहा,
पागल परवाना!
वाह रे हम,
अपनी प्यास
अपनी उलझन
और अपने दीवानेपन पर
हमें अपने से
कभी कुछ भी
नहीं कहना!

अहसास

हमने यहाँ
एक-एक चीज
और अपने बीच
वासनाओं के
नित-नवीन/रंगीन
परदे डाल रखे हैं
कि रोज
कुछ नया लगे
ज़िन्दगी
भ्रम में गुज़र सके
और बासेपन का अहसास
हमें
विरक्त न कर सके।

दोहरे गणित

ज़िन्दगी में
हमारे चाहे/अनचाहे
बहुत कुछ
हो जाता है
हमारा मनचाहा हुआ
तो लगता है
यह हमने किया
हमारा अनचाहा हुआ
तो लगता है
शिकायत करें/पूछें
कि यह किसने किया
जीवन-भर
इसी दोहरे गणित में
हम जीते हैं
और समझ नहीं पाते
कि अच्छा-बुरा
चाहा-अनचाहा
अपने लिए सब
हम ही करते हैं
अपनी मौत की इबारत
अपने हाथों
हम ही लिखते हैं।

'पगडंडी सूरज तक' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC

डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल/588/2003-05

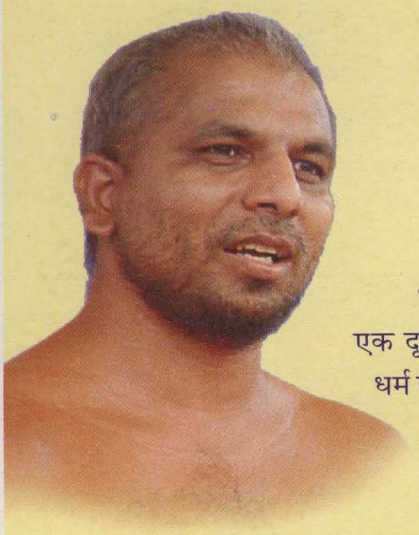

साधर्मी को गले लगाओ

मुनि श्री प्रमाणसागर जी

धर्म और समाज दोनों एक दूसरे के परिपूरक हैं। धर्म जहाँ हमारे वैयक्तिक जीवनोत्थान की साधना है, वहीं समाज एक सी विचारधारा में जीने वाले लोगों का समूह है। धर्म समाज को अनुशासित और नियंत्रित करता है, तो समाज धार्मिक विचारधारा का विकास करता है। धर्म के अभाव में समाज स्वस्थ और सुखी नहीं रह सकता, तो समाज के अभाव में धर्म भी फल-फूल नहीं सकता। धर्म और समाज के इसी सह सम्बन्ध को रेखांकित करते हुए आचार्य समन्तभद्र महाराज ने एक सूत्र दिया है-

न धर्मो धार्मिकैर्विना

धर्मात्माओं के बिना धर्म टिक नहीं सकता। धर्म के विस्तार के लिए धर्मात्माओं का संरक्षण नितान्त अनिवार्य है। वही धर्म चिरस्थायी हो सकता है, जिसके अनुयायी संगठित हों। यह पारस्परिक प्रेम, वात्सल्य और सद्भावों की प्रगाढ़ता पर ही सम्भव है। अतः प्रत्येक धर्मात्मा का यह कर्त्तव्य है कि वह धर्मात्माओं को मजबूती प्रदान करे। अन्यथा धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराएँ धीरे-धीरे छिन्न-भिन्न होने लगती हैं।

धर्मात्माओं के प्रति इसी सहयोग और संरक्षण की वृत्ति को प्रोत्साहित करने की भावना है- साधर्मी वात्सल्य। प्रेम और वात्सल्य सामाजिक जीवन की मूल चेतना हैं। इनके बल पर ही पूरे समाज को एक सूत्र में बाँधकर उन्नत बनाया जा सकता है। कुरल काव्य में कहा है-

अस्थिहीनं यथाकीटं, सूर्यो दहति तेजसा।
तथा दहति धर्मश्च प्रेमशून्यं नृकीटकम्॥

जिस प्रकार अस्थिहीन कीड़े को सूर्य की तेज किरणें जला डालती हैं, उसी प्रकार धर्मशीलता उस मनुष्य को जला डालती है, जो प्रेम नहीं करता।

प्रेम और वात्सल्य के अभाव में धर्म टिक नहीं सकता। वात्सल्य गुण सम्यग्दर्शन का अंग है। जीवन में वात्सल्य का वही स्थान है, जो कि शरीर में हृदय का। हृदयगति के अवरुद्ध होते ही शरीर छूट जाता है। इसी प्रकार वात्सल्य भाव का अभाव होते ही धर्म छूट जाता है। शास्त्रकार कहते हैं-

''प्रेम जीवन का प्राण है। जिसमें प्रेम नहीं वह केवल मांस से घिरी हड्डियों का ढेर है।''

वात्सल्य शब्द 'वत्स' से बना है। जैसे गाय अपने बछड़े के प्रति निश्छल और आन्तरिक प्रेम रखती है, बछड़े को देखते ही उसका रोम-रोम पुलकित हो उठता है, वैसे ही हमें प्रत्येक साधर्मी के प्रति प्रेम-वात्सल्य का भाव रखना चाहिए। सामाजिक चेतना के स्फुरण में वात्सल्य का विशिष्ट स्थान है। पारस्परिक वात्सल्य के बल पर समाज में समरसता लाई जा सकती है। प्रेम-वात्सल्य जीवन में माधुर्य का रस घोलता है। जैसे मरुस्थल के सूखे हुए ठूठ में कोंपलें नहीं फूट सकतीं, वैसे ही प्रेम रहित मनुष्य का जीवन कभी भी फल-फूल नहीं सकता। प्रेम जीवन का आन्तरिक सौन्दर्य है। प्रेम/वात्सल्य के अभाव में बाहरी सौन्दर्य अर्थहीन है। सन्त कहते हैं- जिसका जीवन, प्रेम-वात्सल्य के रस से पगा हुआ है, वह संसार में कहीं भी क्यों न चला जाए उस पर कोई संकट नहीं आता।

'ज्योतिर्मय जीवन' से साभार

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-1, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org